मासिक समाचार पत्र

लोकविद्या पंचायत

● सूचना युग में बराबरी के विचार के पुनर्निर्माण का पत्र ●
● लोकविद्याधर समाज के पुनर्संगठन का वैचारिक आधार पत्र ●
● पूँजी आधारित समाज के स्थान पर ज्ञान आधारित समाज के निर्माण का विचार पत्र ●

प्रकाशन का स्थान : विद्या आश्रम, सा 10/82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी-221007

वर्ष 1, अंक 8-9, कुल पृष्ठ : 12 | दिसम्बर 2011- जनवरी 2012 | सहयोग राशि : 5 रुपये

वाराणसी में लोकविद्या जन आंदोलन का पहला अधिवेशन

लोकविद्या जन आंदोलन के पहले अधिवेशन में भाग लेने के लिए 12-14 नवम्बर 2011 के बीच विद्या आश्रम परिसर में बड़ी तादाद में लोग इकट्ठा हुए। लगभग 300 व्यक्तियों ने अधिवेशन में भाग लिया तथा हर सत्र में 150 से अधिक ही लोग उपस्थित होते थे। ऐसा लगता था कि लोकविद्याधर समाज के संघर्षों में सक्रिय कार्यकर्ताओं की संवेदना और समझ के साथ लोकविद्या जन आंदोलन का विचार कहीं जुड़ रहा था। सामाजिक कार्यकर्ता, किसान आंदोलन के नेता, किसान, कारीगर, कलाकार, बुद्धिजीवी, छात्र और ऐसे कई लोग जो वास्तविक संघर्षों से सम्बन्ध रखते हैं, लोकविद्या दृष्टिकोण से सामाजिक बदलाव के बारे में सोचने की तैयारी से आये थे और एक ऐसे आंदोलन के विचार पर विमर्श में शामिल हुए जो ऐसे लोगों का ज्ञान आंदोलन हो जो कभी विश्वविद्यालय नही गये हैं।

बिहार, झारखण्ड, पश्चिमी बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, दिल्ली, पंजाब, उत्तर प्रदेश और यूरोप से भागीदार आये थे। जिलों को देखें तो मधुबनी, दरभंगा, वैशाली, गया, रांची, देवघर, हजारीबाग, कोलकाता, विजयवाड़ा, चिराला, हैदराबाद, बंगलुरू, पुणे, वर्धा, नागपुर, इन्दौर, धार, मुरैना, रीवा, सिंगरौली, दिल्ली, अमृतसर, अलीगढ़, मुजफ्फरनगर, लखनऊ, सुलतानपुर, बस्ती, फैजाबाद, इलाहाबाद, जौनपुर, गाजीपुर, गोरखपुर, बलिया,आजमगढ़, चन्दौली, सोनभद्र, मिर्जापुर, वाराणसी और वियना से भागीदार आये थे।

तीन प्रमुख विषयों पर चर्चा हुई - लोकविद्या दृष्टिकोण, लोकविद्याधर समाज के संघर्ष और संगठन तथा संचार माध्यम, कला, भाषा, दर्शन। चर्चाओं का संगठन निम्नलिखित मुद्दों के मार्फत किया गयाः लोकविद्या की सामाजिक प्रतिष्ठा, भूमि - बस्ती - कार्य से विस्थापन, लोकविद्या के आधार पर सबको नौकरी, राष्ट्रीय और प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण और सबको उनकी उपलब्धता, लोकविद्या जीवनयापन कानून, लोकविद्या मीडिया और लोकविद्या जन आंदोलन को स्वतंत्रता संग्राम के पूर्ण स्वराज आंदोलन की अगली कड़ी के रूप में देखना।

50 से अधिक व्यक्तियों ने अपने विचार और संदेह भी सबके सामने रखे तथा उन संघर्षों, रचनात्मक कार्यो और संगठन के रूपों की चर्चा की जिनसे वे जुड़े हुये हैं। किसान आंदोलन के नेताओं, विशेषकर भारतीय किसान यूनियन के नेताओं ने लोकविद्या जन आंदोलन को खुला समर्थन दिया। विद्या आश्रम की ओर से सम्मेलन को यह बताया गया कि पिछले दो दशकों से लोकविद्या से सम्बन्धित विचार और अभ्यास किस दौर से होकर गुजरे हैं और किस तरह अब औद्योगिक समाज से सूचना समाज की ओर जाने में हो रहे व्यापक परिवर्तन लोगों के एक ज्ञान आंदोलन के लिए जगह बना रहे हैं, एक ऐसे ज्ञान आंदोलन के लिए जो लोकविद्या जन आंदोलन हो। दुनियाभर में चल रहे आन्दोलनों पर चर्चा के सत्र में इस पर बात हुई कि लोकविद्या दृष्टिकोण किस तरह उन सबसे जुड़ता है। दिन भर चलने वाले सत्रों की समीक्षा के लिए शाम को विश्लेषण, व्याख्या और बहस आयोजित की जाती थी। इन बहसों में अच्छी तादाद में भागीदार इकट्ठा होते थे। मीडिया - कला - भाषा - दर्शन - के सत्र में जीतन मरांडी की रिहाई के लिए सर्व सम्मति से प्रस्ताव पारित किया गया। जीतन मरांडी झारखण्ड के लोक - कलाकार हैं और शोषण व जानलेवा परिस्थितियों से आदिवासियों की मुक्ति के व्यापक अभियानों में शामिल हैं। गिरीडीह जिले की अदालत ने उन्हें एक झूठे केस में फांसी की सजा सुनाई है।

लोकविद्या जन आंदोलन के सैद्धांतिक और व्यवहारिक पक्षों पर गहरी बहस हुई। इस पर बात हुई कि संघर्षों के स्थल पर विकसित हो रही चर्चाओं और समीक्षात्मक दार्शनिक संदर्भों को जोड़कर कैसे नई चुनौतियों का सामना किया जा सकता है। इस पर चर्चा हुई कि क्या विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे संघर्षों तथा लोकविद्याधर समाज के विभिन्न तबकों के संघर्षों को लोकविद्या विचार से अनुप्राणित करने से लोकविद्या जन आंदोलन को आकार देने का स्थान तैयार होता है! यह भी कहा गया कि लोकविद्या विचार के साथ किसानों और आदिवासियों के व्यापक जन आंदोलनों में भागीदारी भी लोकविद्या जन आंदोलन की गति के स्थान हैं। इस पर सामान्य सहमति नजर आयी कि लोकविद्या जन आंदोलन बनाना एक नये किस्म का काम है और इसके लिए कल्पनाशीलता से काम लेना होगा, अभ्यास और विचार के नये रूपों और स्थानों का निर्माण करना होगा।

तीन दिन के इस अधिवेशन का संचालन नौजवानों के एक समूह ने किया— एकता, गुंजन, सौम्या, रवि, अजय और दिलीप इस समूह में शामिल रहे।

●

किसान आन्दोलन द्वारा समर्थन

किसान आन्दोलन के कई नेता अधिवेशन में उपस्थित थे। इन सब ने लोकविद्या जनआन्दोलन का समर्थन करते हुए किसान के दृष्टिकोण से लोकविद्या विचार के महत्त्व को उजागर किया और उसमें अपनी सोच जोड़ी। भारतीय किसान यूनियन के राष्ट्रिय नेतृत्व राकेश सिंह टिकैत और राजपाल शर्मा दोनों ने हीं लोकविद्या विचार के मार्फत गाँव में व्यापक एकता बनाने की संभावना पर बल दिया। महाराष्ट्र के किसान नेता विजय जावंधिया और उत्तर प्रदेश का नेतृत्व दीवान चन्द्र चौधरी और घनश्याम वर्मा ने अपने-अपने विचार रखे। वाराणसी मण्डल के नेतृत्व जगदीश सिंह यादव, दिलीप कुमार 'दिली', लक्ष्मण प्रसाद, बाबूलाल 'मानव' और राजनाथ यादव अपने समर्थकों के साथ अधिवेशन में उपस्थित थे। इन सब ने भी लोकविद्या को किसान की शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। किसान सत्र की अध्यक्षता भारतीय किसान यूनियन पंजाब के अध्यक्ष अजमेर सिंह लखोवाल ने की।

●

लोकविद्या जनआन्दोलन अधिवेशन में उभरे महत्त्वपूर्ण मुद्दे

1. लोकविद्या जीवनयापन अधिकार कानून
2. हर वयस्क को नौकरी-लोकविद्या के आधार पर नौकरी और सरकारी कर्मचारी का वेतन
3. राष्ट्रीय संसाधनों (बिजली, शिक्षा, वित्त ...) का बराबर का बँटवारा
4. स्थानीय बाजार– छोटी दुकानदारी को संरक्षण
5. किसानों की ऊपज को जायज दाम
6. खाद्य व वस्त्र के क्षेत्रों का स्त्रियों के लिये आरक्षण
7. विस्थापन बन्द हो
8. प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय समाजों का नियन्त्रण
9. लोकविद्या को ज्ञान की दुनिया में बराबरी का स्थान
10. विश्वविद्यालय की दीवारें गिरें
11. हर गाँव में मीडिया स्कूल
12. लोकविद्याधर समाज की एकता में ही परिवर्तन का सूत्र है

लोकविद्या जन आन्दोलन अगले वर्ष के कुछ कार्यक्रम

1. लखनऊ - लोकविद्या विचार पर कार्यशाला, जनवरी 2012
2. दरभंगा - लोकविद्या सम्मेलन, मार्च 2012
3. विजयवाड़ा - लोकविद्या सम्मेलन, मई 2012
4. सिंगरौली - लोकविद्या सम्मेलन, 9 अगस्त 2012
5. वर्धा - लोकविद्या कार्यक्रम, अक्टूबर 2012
6. इन्दौर - लोकविद्या बाजार पर तीन दिवसीय कार्यक्रम, दिसम्बर 2012

लोकविद्या जन आन्दोलन गैर पढ़े-लिखे लोगों का ज्ञान आन्दोलन है। इस कार्य एवं विचार में जिन्हें भी रुचि हो हमसे अवश्य सम्पर्क करें।

सम्पादक एवं प्रकाशक
विद्या आश्रम
सा 10/82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ,
वाराणसी-221007

सम्पर्क फोन :
09452824380 दिलीप कुमार 'दिली'

इस अंक के बारे में

लोकविद्या पंचायत का यह अंक वाराणसी में 12-14 नवम्बर 2011 को हुए लोकविद्या जन आन्दोलन के पहले अधिवेशन में हुए विचार, वार्ता और निष्कर्ष को लेकर बना है।

अधिवेशन में किसान आन्दोलन के नेताओं के वक्तव्य

लोकविद्या का विचार गाँव में एकता लायेगा

राकेश टिकैत भारतीय किसान यूनियन (भा.कि.यू.) के राष्ट्रीय प्रवक्ता हैं। किसान आंदोलन ने किसानों और सामान्यतौर पर गरीब वर्गों को बढ़ावा देने की सरकार की नीति क्या होनी चाहिए इस पर पिछले 30 वर्षों में एक विचार बनाया है। राकेश टिकैत ने सरकार की नीति में बदलाव की मांग करते हुए अपने वक्तव्य में यही विचार सामने रखा । उन्होंने सब्सिडी और बाजार मूल्य के दो सशक्त आधार को नीतियों में समाहित करने की बात की। उन्होंने कहा कि जिस तरह किसान को सीधे सब्सिडी और उसकी उपज के जायज दाम के परिये ही उसकी हालत में सुधार लाया जा सकता है उसी तरह जिनके पास जमीन नही है और जो तरह-तरह के कारीगरी पर अधारित उत्पादन का काम करते हैं उनको भी सीधे आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए और उनकी वस्तुओं को बाजार में ढंग की कीमत मिलनी चाहिए। लकड़ी, धातु और तरह-तरह के पदार्थों से अनेक वस्तुएं बनायी जाती हैं, जो बहुत सुंदर और अच्छी होती हैं और जिनको बड़े बाजारों में अच्छा दाम भी मिलता है लेकिन कारीगरों को उस दाम का बहुत छोटा हिस्सा ही मिलता है, जिसके चलते वे बेहद गरीबी में रहते हैं। गाँवों में जो भूमिहीन हैं वे सब कोई न कोई काम करना जानते हैं। उनके पास ज्ञान और हुनर होता है जिसे लोकविद्या कहते हैं। सरकार की नीति ऐसी होनी चाहिए कि उन लोगों को जो काम वे करते हैं उसी काम को बढ़ावा देने के लिए आर्थिक मदद मिलनी चाहिये। यह मदद एन.जी.ओ. के मार्फत न होकर सीधे दस्तकारों को दी जानी चाहिए। उन्होंने यह साफ किया कि कृषि उत्पादन का मूल्य लागत के आधार पर तय नही होता बल्कि सरकार कितना उत्पादन चाहती है उसके मद्देनज़र तय किया जाता है। उत्पादन ज्यादा होता है तो मूल्य कम मिलता है इसलिए किसान आंदोलन की आगे की दिशा यह होगी कि किसान रासायनिक खाद का इस्तेमाल बंद करे और किसानी के पारम्परिक तरीके अपनाये। इससे लागत पर खर्च कम होगा और उत्पादन कम होने की अवस्था में फसल का दाम भी ज्यादा मिलेगा उन्होंने लोकविद्या जन आंदोलन का समर्थन करते हुए यह आशा व्यक्त की कि इससे पूरे गाँव में एकता बनाने और सरकार की नीतियों में बदलाव लाने में मदद मिलेगी।

लोकविद्या जीवनयापन कानून के लिए पूरा समर्थन

राजपाल शर्मा भा.कि.यू. के राष्ट्रीय महासचिव हैं। वे किसानों के संगठन व संघर्ष में बराबर अगुआ की भूमिका निभाते रहे हैं। उन्होंने इस विचार से स्पष्ट सहमति जतायी कि लोकविद्या यानि अपने ज्ञान और हुनर के बल पर जीवन यापन का अधिकार जनता का जन्मसिद्ध अधिकार है। उन्होंने कहा कि किसान यूनियन का कृषि ऊपज के जायज दाम के लिए और जबर्दस्ती भूमि अधिग्रहण के खिलाफ लगातार आंदोलन चलता रहा है, दिल्ली में दस्तक देता रहा है। आप लोकविद्या जीवनयापन कानून बनवाने के लिए दिल्ली में प्रदर्शन की एक तारीख तय कीजिये, भा.कि.यू. दसों हजार किसानों को लेकर इस प्रदर्शन में शामिल होगा और लोकविद्या के पक्ष में कानून बनाने के लिए सरकार को मजबूर करेगा।

लोकविद्या के विचार ने किसान संगठन में नयी जान फूंक दी है

भारतीय किसान यूनियन के वाराणसी मण्डल **अध्यक्ष जगदीश सिंह यादव** अस्वस्थ होने के बावजूद अधिवेशन में उपस्थित थे। लोकविद्या जन आंदोलन के प्रथम अधिवेशन की तैयारी के हर कदम पर वे साथ रहे हैं। लोकविद्या विचार व कार्यक्रमों को आकार देने में उनका सक्रिय सहयोग रहा। वाराणसी मण्डल के **महासचिव दिलीप कुमार** ने कहा कि लोकविद्या विचार से जब किसानों की समस्याओं और संघर्षों को देखते हैं तो एक ऐसी जीत की संभावना नजदीक आती देखी जाती है जिसके बाद हमें हर कमद पर पानी, बिजली और दाम की लड़ाई न लड़नी पड़े। रो-रोज की लड़ाई से छुटकारा मिलने के रास्ते खुलते हैं। वाराणसी मण्डल में जगह-जगह पर शिविर लगाकर लोकविद्या की बात की जाती रही है और विस्थापन के सवाल को लोकविद्या दृष्टि से किसानों के बीच रखा जाता रहा है। इन वार्ताओं में किसानों ने लोकविद्या में विश्वास प्रकट किया है और संगठन को एक नई चेतना और मजबूती मिलने की शुरूआत हो गई है। वाराणसी के **जिलाध्यक्ष लक्ष्मण प्रसाद** ने वाराणसी शहर के आसपास प्रशासन द्वारा किसानों की जमीन के अधिग्रहण के खिलाफ भारतीय किसान यूनियन के नेतृत्व में हो रहे संघर्षों को विस्तार से रखते हुये कहा कि लोकविद्या के बल पर जीवनयापन के अधिकार के विचार ने इन संघर्षों में एक नई जान फूंक दी है।

अध्यक्षीय भाषण

अजमेर सिंह लखोवाल पंजाब के भा.कि.यू. के अध्यक्ष हैं, पंजाब कृषि मंडी बोर्ड के अध्यक्ष हैं और अखिल भारतीय मंडी समिति के भी अध्यक्ष हैं। ये किसान आंदोलन में 1980 से सक्रिय हैं। इन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि आजादी के बाद हमने ज्ञान और शिक्षा के प्रति अपना रवैया नही बदला और अंग्रेजों की ही नीति पर कायम रहे। गाँव में सभी तरह का ज्ञान होता था, बुनकर, मिस्त्री, जूता बनाने वाले सभी थे और आज भी हैं लेकिन सरकार की नीतियाँ धीरे-धीरे करके इनका काम छीनती चली गईं और बड़े उद्योगों को सौंपती चली गईं। इस स्थिति में बदलाव लाने के लिए उन्होंने व्यापक ग्रामीण एकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि आने वाले दिनों में जो संघर्ष करने हैं उसमें लोकविद्या जन आंदोलन और भारतीय किसान यूनियन को मिलकर पूरे गाँव की एकता कायम करनी चाहिए। उन्होंने 25 नवम्बर 2011 को अमृतसर में होने वाले अखिल भारतीय किसान सम्मेलन और रैली में भाग लेने के लिए लोकविद्या जन आंदोलन को आमंत्रित भी किया।

किसान और कारीगर अद्भुत क्षमताओं के धनी हैं

दीवानचंद चौधरी भा.कि.यू. के उत्तर प्रदेश के अध्यक्ष हैं। आपने संक्षेप में लोकविद्या और किसान यूनियन की भूमिकाओं को संगठन और संघर्ष की दृष्टि से जोड़कर सभा के सामने रखा। उन्होंने कहा कि नाई, बढ़ई, लोहार, कुम्हार, बुनकर, स्वास्थ्य कार्यकर्ता और तरह-तरह के ज्ञानी और हुनरमंद लोग जिन्हें हम लोकविद्या का स्वामी कह सकते हैं, कभी स्कूल या कॉलेज नही गये होते लेकिन अद्भुत क्षामताओं के धनी होते हैं। ये लोग अपनी विद्या अपने परिवार और समुदाय में अपनी परम्परा से काम के स्थान पर और अपने तजुर्बे से सीखते और उन्हें आगे बढ़ाते हैं। आज वे पूरी तरह असम्मान और उपेक्षा के शिकार हैं। जिसके चलते इनका ज्ञान और हुनर घटता जा रहा है और ये खुद गरीब होते चले जा रहे हैं। ये बृहद ग्रामीण समुदाय के हिस्से हैं और भा.कि.यू. इन्हें भी संगठित करने का दृष्टिकोण रखता है। भूमिधर, कलाधर और श्रमधर यानि किसान, कारीगर और मजदूर आपस में व्यापक एकता कायम करें तथा संघर्षों में एक दूसरे का सहयोग करें। ऐसी पहल लेने के लिए भा.कि.यू. सदैव तत्पर रहता है।

किसान और कारीगर वैज्ञानिक भी हैं और इंजीनियर भी

घनश्याम वर्मा भा.कि.यू. के उत्तर प्रदेश के महासचिव हैं। इन्होंने बड़ी सफाई से कारीगरों और किसानों की स्थिति और ज्ञान के बीच समानता को उजागर किया और संघर्ष व संगठन के बल पर कुछ भी हासिल हो सकता है इसके लिए तर्क प्रस्तुत किये। उन्होंने कहा कि किसान-कारीगर वैज्ञानिक भी हैं और इंजीनियर भी हैं लेकिन न उन्हें उनकी जरूरत का सामान मिलता है और न बाजार में उनके उत्पाद के मूल्य। उनकी हैसियत को न मान्यता दी जाती है और न ही उन्हें समाज में सम्मान मिलता है। जिस समाज के प्रति ऐसा अन्याय होगा निश्चित तौर पर उसे संगठित होना पड़ेगा और अपने हक और सुविधा के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। उन्होंने सरल शब्दों में बताया कि किसान इतना ज्ञानी है कि वह मिट्टी में अंगूठा लगाकर यह बता देता है कि मिट्टी की क्या स्थिति है, इसमें कब जुताई होनी है कब बुवाई होनी है, कौन सी फसल होनी है, कितनी नमी की ज़रूरत है, कौन सी खाद डालनी है आदि। वह बादल की ओर देखकर बता सकता है कि बरसात होगी कि नहीं, कारीगरों में कुम्हार को ही ले लीजिए - मिट्टी को तोड़कर अच्छी मिट्टी बनाना, अच्छी मिट्टी बनाकर चाक पर चलाना और चाक पर तमाम आकृतियों के सामान बनाना कोई आसान काम नही है और जिस कुल्हड़ में आप चाय पीते हैं वह उसे 15 रूपये सैकड़े में बेचता है। कोई इंजीनियर उस कुल्हड़ को नही बना सकता। गाँव की दवाओं को खोजकर लाने की जानकारी गाँव वालों को ही होती है किन्हीं डाक्टरों को नही। किसान यूनियन इन सभी कलाकार समाजों को और किसानों को साथ संगठित करने का स्थान है। यूनियन का दृष्टिकोण **चौ. महेन्द्र सिंह टिकैत** के नेतृत्व में तैयार हुआ था— भूमिधर, कलाधर और श्रमधर को इकट्ठा करके संघर्ष और संगठन के रास्ते प्रदेश या देश की सरकार के कान पकड़कर यह बताना कि इन समाजों की क्या ज़रूरतें हैं और उन्हें कैसे पूरा करवाना है। भा.कि.यू. पूरे लोकविद्याधर समाज का संगठन है। सभी को भा.कि.यू. के झण्डे तले इकट्ठा करके अपनी समस्याओं को हल करवाना है।

असिंचित खेती के किसान को 10,000 रुपये प्रति एकड़ आर्थिक सहायता मिले

विजय जावंधिया महाराष्ट्र के किसान नेता हैं। ये पूर्व में शेतकरी संघटना के अध्यक्ष और किसान संगठनों की अंतर्राज्य समन्वय समिति के अध्यक्ष रह चुके हैं। इन्होंने किसानों के उत्पादन के लिये जायज मूल्य और खेत- मजदूरों की मजदूरी में बढ़ोत्तरी की माँग की। इनका कहना था कि पाँचवे और छठे आयोग ने जिस तरह सरकारी तनख्वाहें बढ़ाई हैं, उससे और सरकार की अन्य नीतियों से जो मुद्रास्फिति हुई, उससे तमाम वस्तुओं के दाम बढ़े हैं। लेकिन कृषि उत्पादन के दामों और मजदूरों की मजदूरी में बढ़ोत्तरी बेहद कम हुई है। जबकि पिछले 40 वर्षो में वेतनभोगी समाज का वेतन लगभग 100 गुना बढ़ा है, कृषि उत्पाद के मूल्य की बढ़ोत्तरी केवल 15-20 गुना हुई है। और लगभग इसी अनुपात में मजदूरों की मजदूरी भी बढ़ी है। अमीरों और गरीबों के बीच की खाई बढ़ती चली जा रही है। समाज में किसी भी संतुलन की ओर जाने का एकमात्र तरीका यही है कि कृषि उत्पादन का मूल्य बढ़े और मजदूरों की मजदूरी बढ़े। मनरेगा के मजदूरों के लिए इन्होंने 300 रूपये प्रति दिन की न्यूनतम मजदूरी की माँग की और असिंचित खेती करने वालों के लिए 10,000 रूपये प्रति एकड़ प्रति वर्ष की सब्सिडी की माँग की।

किसान देश की रीढ़ हैं

गाजीपुर के भारतीय किसान यूनियन के वरिष्ठ नेता और पहले सत्र के सह-अध्यक्ष **बाबूलाल मानव** ने समग्र सामाजिक सोच की ओर ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने कहा कि अंग्रेजों ने देश को गुलाम बनाने के लिये यहाँ की संस्कृति, ज्ञान और सभी किस्म की दक्षताओं का यथा संभव विनाश किया। अब स्थिति यह है कि देश का नौजवान किसी न किसी तरह से डीग्री हासिल करके नौकरी के पीछे दौड़ता रहता है। लेकिन देश का आधार किसान है जिसमें किसान यूनियन ने हमेशा से मजदूर और कारीगर को शामिल किया इसीलिये भूमिधर, श्रमधर और कलाधर की भाषा ने जन्म लिया। उन्होंने आध्यात्मिक मूल्यों पर तथा अपने मन से काम करने पर जोर दिया।

पूरी व्यवस्था पर प्रहार करना होगा

बलवंत यादव बलिया में किसान संगठन का काम करते हैं। उन्होंने भूमि अधिग्रहण के खिलाफ अपना वक्तव्य दिया। बलिया से नोयडा तक प्रस्तावित गंगा एक्सप्रेस वे के अंतर्गत किये जा रहे भूमि अधिग्रहण के खिलाफ वे मूलरूप से संघर्षरत हैं। उन्होंने कहा कि अंग्रेजी काल में देश के परम्परागत संसाधनों को नष्ट कर दिया गया और तभी इस देश पर विदेशी राज कायम हुआ। आजादी के बाद से इस देश के पूँजीपतियों, राजनेताओं और अफसरों ने आपस में गठबन्धन करके कृषि को और कृषि योग्य भूमि को संकट में डाल दिये हैं। गेहूँ की बुवाई के समय फास्फेटिक खाद के दाम में लगातार बढ़ोत्तरी और उसका न मिलना इसका एक उदाहरण है। सब्सिडी, दाम, कीटनाशक, भूमि अधिग्रहण, न्यूनतम मजदूरी इन सबकी चर्चाओं के मार्फत उन्होंने कृषि के संकट को उजागर किया और कहा कि अब केवल अलग-अलग विषयों पर संघर्ष से कुछ नही होगा बल्कि पूरी व्यवस्था पर प्रहार करना होगा।

सारनाथ के किसानों का जुलूस

अधिवेशन की सभा के बीच बरईपुर गाँव, सारनाथ के किसानों का एक जुलूस भारतीय किसान यूनियन जिंदाबाद के नारे लगाता शामिल हुआ। बरईपुर में लगभग 70-80 परिवारों की जमीन लोटस पार्क बनाने के लिये अधिग्रहित करने की प्रशासन ने योजना बनाई है। इस गाँव के किसान भारतीय किसान यूनियन के नेतृत्व में पिछले छः माह से संघर्ष कर रहे हैं और प्रशासन को कोई भी कदम उठाने से रोके हुये हैं। करसड़ा के किसान कूड़ा डम्पिंग प्लांट लगाने का विरोध कर रहे हैं। वे इस सभा में मौजूद थे। सथवां गाँव के किसान नेता भी यहाँ मौजूद थे जिन्होंने 60 दिनों तक धरना देकर सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट अपने गाँव में लगने नहीं दिया और प्रशासन को झुकना पड़ा।

क्षेत्रीय संघर्ष और संगठन में लोकविद्या विचार प्रवाह

दूसरे दिन, 13 नवम्बर की सुबह विभिन्न क्षेत्रों से आये संगठकों ने अपने क्षेत्रों में ली जा रही लोकविद्या पहल की चर्चा की। इंदौर, सिंगरौली, दरभंगा, वैशाली, देवघर, चिराला और वाराणसी के साथियों ने संक्षेप में अपनी-अपनी बातें कहीं।

लोकविद्या बाजार बनाओ

इंदौर से आये साथियों की ओर से **संजीव कीर्तने** ने बताया कि इंदौर के आस-पास के गाँव में 'लोकविद्या बाजार बनाओ' के नाम से लोकविद्या पहल ली गई है। संजीव वहाँ एक पालिटेक्निक कालेज में प्राध्यापक हैं और कई वर्षों से विद्या आश्रम से जुड़कर लोकविद्याधर समाजों की उत्पादन गतिविधियों में सांगठनिक दखल ले रहे हैं। उन्होंने इंदौर का इतिहास बताते हुये कहा कि आधुनिक इंदौर कैसे पहले कपड़ा मिलों की स्थापना के साथ विकसित हुआ और अब वह पूरा क्षेत्र उच्च शिक्षा और व्यापार तथा बड़े सरकारी संस्थानों का केन्द्र बन गया है। नतीजे स्वरूप कृषि और परम्परागत व ग्रामीण उद्योगों पर बेहद प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। किसानों और तरह-तरह का काम जानने वाले ग्रामीणों के बीच वे लोग लोकविद्या बाजार के अंतर्गत एक नये विचार और कार्य के मार्फत एक नये किस्म के आंदोलन की नींव डालना चाहते हैं। वे इंदौर के इर्द-गिर्द 150 गाँवों में लोकविद्याधर समाजों के लिये जगह-जगह आपस में चर्चा के स्थान बना रहे हैं। ये पाँच खम्भों (किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटा दुकानदार ,महिला) के झोंपडीनुमा स्थान हैं जहां से 'लोकविद्या बाजार बानाओ' की प्रक्रियायें शुरू की जा रही हैं। उनके अपने सांस्कृतिक कार्यक्रमों और खेलों को पुनर्संगठित करने के प्रयास शुरू किये गये हैं। गाँव वाले गाँव वालों का ही सामान खरीदें इस अभियान को आकार दिया जा रहा है। यहाँ से वापस जाने के बाद एक लोकविद्या कला यात्रा का आयोजन है। उद्देश्य के रूप में उस दिन की पहचान की गई है जब इन 150 गाँवों के लोकविद्याधर इंदौर शहर को घेरकर अपने लिये बाजार हासिल करेंगे।

विस्थापन से पूरा क्षेत्रीय समाज प्रभावित होता है

अवधेश कुमार समाजवादी धारा से आते हैं तथा 1983 में **सिंगरौली** गये और तब से वहीं विस्थापन के संघर्षों के केंद्र में रहे हैं। उन्होंने बताया कि किस तरह अब कुछ समय से लोकविद्या दृष्टिकोण के चलते विस्थापन के नतीजों को समझने की एक नई दृष्टि मिली है और किसानों व आदिवासियों के संगठन व संघर्ष एक नये दौर में प्रवेश करें इसकी संभावना उजागर हुई है। उन्होंने इलाके का दर्द अति संक्षेप में सामने रख दिया। कहा कि वाराणसी से 200 किलोमीटर दक्षिण में स्थित देश की इस ऊर्जा की राजधानी की त्रासदी रिहन्द बांध बनने के साथ 1950 के दशक के अंतिम वर्षों में शुरू हुई। सबसे पहले वहाँ के 145 गाँव उजाड़े गये। फिर 1970 के दशक के अंतिम वर्षो में एक के बाद एक कोयला खादानों, तापीय बिजली काराखानों, रेल, सड़क, आवासीय कालोनियों के चलते गाँवों के उजाड़ का विस्तार होता चला गया। कुछ गाँव तो ऐसे भी हैं जो 60 साल में चार-पाँच बार उजाड़े हैं। वैश्वीकरण के बाद से अब पिछले 15 वर्षो से एक नया दौर आया है। बड़ी-बड़ी निजी कम्पनियाँ तापीय बिजली के कारखाने लगा रही है और तरह-तरह की धातुओं के कारखाने भी। लैन्को, रिलायंस, जे.पी., एस्सार, हिन्डालको, दैनिक भास्कर सभी वहाँ आ चुके हैं। बड़े पूँजीपति तो जैसे गिद्धों की तरह इलाके पर नजर गड़ाये हुये हैं।

पहले दौर में विस्थापन विरोधी संघर्षों में देश-विदेश के चिंतकों और विचारकों का जैसा आवागमन और समर्थन रहा वैसा अब नही है। लगता है अब ये लोग विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय परियोजनाओं के आने जाने के साथ ही आते-जाते हैं।

विद्या आश्रम से जुड़ाव के साथ एक दृष्टि यह मिली है कि सवाल पूरे प्रभावित क्षेत्र का है न कि केवल विस्थापित गाँव का। इन परियोजनाओं के चलते पूरे क्षेत्र के किसान, आदिवासी, कारीगर, छोटे-छोटे दुकानदार और इनके घरों की महिलायें सभी प्रभावित होते हैं, बाजार बदल जाता है, संसाधन छीन लिये जाते हैं, सामाजिक मूल्य बदल जाते हैं और पूरा का पूरा समाज एक नई टूट का शिकार होता है। पिछले एक वर्ष में 7-8 जगहे बैठके की गई हैं। हम लोकविद्या विचार के साथ गाँव में गये हैं। ट्रेड यूनियनों में भी गये हैं। अनपरा, डिबुलगंज, बीना, बैढ़न, नवजीवन विहार, माण्डा, बरगवाँ, सरई, धरी इन सभी जगह लोकविद्या विचार के साथ बातचीत शुरू हुई है। जरूरत है कि इस क्षेत्र को लोकविद्या जन आंदोलन का एक सघन क्षेत्र बनाया जाय। आप लोग वहाँ आयें और लोकविद्याधर समाज की बृहत एकता कायम करने में सहायता करें।

लोकविद्या साधिकार संघटना

मोहनराव आंध्रप्रदेश के **चिराला** नगर से आते हैं। वे हथकरघा बुनकरों के एक बड़े संगठन के सचिव हैं। उन्होंने 1999 में चिराला में लोकविद्या के एक क्षेत्रीय अधिवेशन का आयोजन किया था। उसी समय से वे लोकविद्या दृष्टिकोण से आन्ध्रप्रदेश में कार्यरत हैं। उन्होंने अब विजयवाड़ा से एक लोकविद्या साधिकार संघटना की स्थापना की है। उनका वक्तव्य तेलगु में था जिसका अनुवाद कृष्णराजुलु ने किया। उन्होंने कहा कि कुछ समय पहले उत्तरी आन्ध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम जिले के तटवर्ती इलाकों में सोमपेटा और काकड़पल्ली में निजी तापीय बिजली घरों के लिये अनेक गाँवों के किसानों और मछुआरों को विस्थापित किया गया। ये लोग इस अत्याचार के खिलाफ खुद संगठित हुये और लम्बा संघर्ष चलाये। प्रशासन ने इनके उपर गोलियाँ चलवाई, कुछ लोग मारे भी गये। लेकिन संघर्ष जारी है। महिलाओं की भागीदारी बहुत अधिक है। उन्हें लम्बे-लम्बे समय (महीनों) के लिये गिरफ्तार भी किया है। आन्ध्र प्रदेश में ही दक्षिण में नेल्लौर नाम के जिले में लगभग 40 तापीय बिजली घर प्रस्तावित हैं और उनके लिये कोयला आपूर्ति के लिये वहाँ कृष्णपट्टनम बंदरगाह बनाया जा रहा है। इन सबसे होने वाले विस्थापन और पर्यावरणीय विनाश के खिलाफ गोलबंद होना शुरू कर दिया है। लोकविद्या साधिकार संघटना की दोनों ही जगहों पर भागीदारी रही हैं। आंध्र प्रदेश में 700 किलोमीटर समुद्र तट पर लगभग हर 50 किलोमीटर पर तापीय बिजलीघर प्रस्तावित है। जाहिर है बहुत बड़े पैमाने पर विस्थापन होना है।

इन परिस्थितियों में दखल लेने के लिये और विकास के प्रश्न पर मौलिक सवाल उठाने के लिये लोकविद्या साधिकार संघटना तैयारी कर रहा है।

उदयपुर के समझु-बुझु

मधुलिका बैनर्जी दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ाती हैं। आपका अध्ययन स्वास्थ्य व चिकित्सा के क्षेत्र से संबंधित है। मधुलिका जी ने लोकविद्या जन आंदोलन के विश्वविद्यालय विरोधी तेवर को पहचानते हुये यह आग्रह रखा कि इस आंदोलन के दृष्टिकोण से विश्वविद्यालयीय अध्ययन क्षेत्रों को भी प्रभावित करना चाहिये, उनपर सवाल उठाने चाहिये और उन्हें चुनौती देना चाहिये। और यह कि वे खुद व उनके साथी विश्वविद्यालय में आंदोलन का यह पक्ष रखते हैं। हम अपने शोध को इसी नजरिये से देखते हैं।पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान आधुनिक चिकित्सा के ज्ञान को बहुत बड़ी चुनौती देता है। पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान का बड़े पैमाने पर बाजारीकरण हुआ है। उन्होंने वैधता अथवा मान्यता प्राप्त करने के लिये बाजार की सारी शर्तो को माना है। क्या इससे पारम्परिक ज्ञान खुद एक बदलाव के दौर में आ गया है? क्या वह बाजार की शर्ते मानने के बाद भी उसी अर्थों में पारम्परिक रह जाता है? मधुलिका जी ने लोकस्वास्थ्य परम्परा के एक बड़े उदाहरण उदयपुर के 'समझु-बुझु' समूहों के अपने अध्ययन के बारे में बताया। कहा कि इन्हें डाक्टर लोग जिनमें आयुर्वेद वाले भी शामिल हैं, कोई सम्मान नही देते। किंतु एक बार ऐसा हुआ कि डिप्थेरिया के चलते बच्चे मरने लगे और कॉलेज से पढ़कर आये डाक्टर कुछ नही कर सके। तब समुझु-बुझु ने बच्चों को बचाया और यही से उनका संघर्ष शुरू होता है। वहाँ एक संगठन है जिसने इस संघर्ष के लिये उन्हें 'गुणी' का नाम दिया और उनके ज्ञान का दस्तावेजीकरण किया। लोकविद्या की वैधता किस किस आधार पर मांगी जानी चाहिये? उनके ज्ञान की अपनी शर्तों पर या फिर ग्रंथीय ज्ञान की शर्तो पर? उदयपुर में एक के बीच का रास्ता निकालने का प्रयास है। इन गुणी लोगों के ज्ञान का दस्तावेजीकरण आसान नही होता। उनकी भाषा एक होती है और लिखने वाले की समझ की आधुनिक भाषा अलग होती है।

आधुनिक ज्ञान इतना व्यवस्थित है तभी तो वह लोकविद्या को इतना दबाकर रख सकता है। लोकविद्या को अपनी वैधता का तर्क बहुत मजबूती से पेश करना होगा। ज्ञान की सत्ता का जो ढ़ाँचा बना हुआ है उसमें लोकविद्या द्वारा अपने महत्व को दिखाना स्वयं संघर्ष का एक हिस्सा है। उदयपुर के संघर्ष से इस बारे में कुछ सीखने को मिलता है। यह बहुत कठिन संघर्ष है लेकिन कुछ लोग अगर ठान लें तो इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। जगह-जगह से लोकविद्या को लेकर संघर्ष करने वाले आये हुये हैं।हम आपस में मिलकर इस संघर्ष को आगे बढ़ा सकते हैं।

आधुनिक ज्ञान बनाम लोकविद्या नदी क्षेत्र के संघर्ष

विजय कुमार का सामाजिक और आंदोलनात्मक जीवन 1970 के दशक के बिहार आंदोलन से शुरू होता है ये जन आंदोलनों के राष्ट्रीय समन्वय के बिहार राज्य के अध्यक्ष रह चुके हैं। लम्बे वर्षों तक जल की व्यवस्था और इसमें लोगों की पहल पर काम करते रहे हैं। उन्होंने बताया कि **दरभंगा** और आसपास का पूरा क्षेत्र नदियों और जल विस्तार का क्षेत्र है।लोकविद्या आधारित संगठन और संघर्ष के लिये यह क्षेत्र उर्वर भूमि देता है। दरभंगा में अक्टूबर माह में हुई बैठक में विद्या आश्रम से लोग उपस्थित थे तथा वहाँ के लोगों ने लोकविद्या विचार के साथ जुड़ने और आगे काम करने में रुचि दिखाई। सबसे महत्वपूर्ण सवाल संगठन के रूप और बनाने के तरीके का है। क्या यह व्यक्तियों का संगठन होगा या समूहों का होगा या कोई मिलाजुला रूप होगा यह बात उन्होंने चर्चा के लिये रखा। उन्होंने कहा कि संगठन बनाने की शुरुआत हम मिथिला से करेंगे यानि दरभंगा, मधुबनी और समस्तीपुर जिले से। इन तीनों में विचित्र स्थिति है, बड़े पैमाने पर विस्थापन हुआ है लेकिन कारखाना आपको कहीं दिखाई नहीं देगा। यह विस्थापन यहाँ की जल व्यवस्था से छेड़छाड़ के चलते होता है। यहाँ की पारम्परिक व्यवस्थायें नदियों और तालाबों की प्रचुरता से जुड़ी हुई थीं। रामायण तक में यहाँ की समृद्धि का विस्तृत वर्णन है। यह राजा जनक का क्षेत्र रहा। जबसे आधुनिक ज्ञान, वैज्ञानिक,इंजीनियर और मैनेजर पहुँचा है लोकविद्या पर आधारित व्यवस्थायें छिन्न-भिन्न हो गई। नदियों को बाँधने, तटबंध बनाने की योजनायें आ गईं। कोसी, गंडक, कमला, बागमती सभी नदियाँ तटबंधों का शिकार हो गईं। नतीजा क्या हुआ? बिहार से निकलने वाली सारी गाड़ियों में विस्थापितों की फौज मजदूरी करने जाते दिखाई देती है। आपने बाढ़ से बचाने के तटबंध बनाये और सैकड़ों गाँवों को जलमग्न कर दिया। यह आधुनिक ज्ञान मिथिला प्रदेश की तबाही का पैगाम ले कर आया। लोकविद्या के आधार पर नये सिरे से संघर्ष और संगठन की माँग है। इसी का प्रयास हमने वहाँ शुरू किया है।

सुनील कुमार मण्डल मधुबनी के सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं। इन्होंने थोड़े विस्तार में बताया कि दरभंगा, मधुबनी और समस्तीपुर में कैसे संगठन की कल्पना की जा रही है। इन जिलों में कुल मिलाकर 60 प्रखण्ड हैं। हर प्रखण्ड से 10 व्यक्तियों की टीम बनाने का प्रयास होगा। मिथिला में मजबूत संगठन बनेगा और पूरे बिहार में यहाँ से लोकविद्या जन आंदोलन का संदेश जायेगा।

मगध की लोकविद्या आधारित जल व्यवस्था

रवीन्द्र कुमार पाठक पालि के प्राध्यापक हैं। **गया** में रहते हैं और दक्षिण बिहार की पानी की समस्या पर काम करते हैं। ये लोकविद्या समूह और विद्या आश्रम के साथ शुरू से जुड़े हुये हैं। उन्होंने यह कहते हुये अपनी बात शुरू की कि किसी भी आम आदमी के पास यदि विद्या हैं और विद्या का गौरव है तो वह सर उठा के जी सकता है। अन्यथा वह हीन भावना से ग्रस्त रहेगा जिससे समस्याओं से जूझने की हिम्मत टूट जाती है। इस दृष्टि से लोकविद्या के मौलिक महत्व से इनकार नही किया जा सकता। दक्षिण बिहार में दो तरह की पानी की व्यवस्थायें हैं, अंग्रेजों के समय से ही और अभी हाल 1997 तक। एक सरकारी क्षेत्र होता है, जिसमें सिंचाई के पानी की व्यवस्था सरकारी होती है, उन्हीं का निर्माण, प्रबंधन, रखरखाव सब कुछ। दूसरा हिस्सा निजी व्यवस्था के नाम से जाना जाता है जो वास्तव में किसानों की भागीदारी की सामूहिक व्यवस्था है। वैसे इसके बारे में भी सरकारी दस्तावेजों में सारी लिखित सूचनायें होती हैं। 1997 के बाद विश्व बैंक के दबाव में राष्ट्रीय स्तर पर जलनीति में बदलाव आया है। सरकारी सिंचाई के क्षेत्र में किसान लोकविद्या आधारित जल व्यवस्थाओं के बारे में काफी कुछ भूल चुके हैं। किंतु सामूहिक भागीदारी के निजी क्षेत्र में लोकविद्या आधारित व्यवस्थायें ही चलती हैं। यह 'आहर-पइन' व्यवस्था है। 'आहर' जल संचय क्षेत्र होता है और 'पइन' उससे निकलने वाली छोटी-छोटी नहरों की व्यवस्था। धान की खेती के बाद 'आहर' खाली हो जाता है रबी की फसल के लिये। 1997 में यह जलनीति बनी कि वर्षा के सारे पानी पर राज्य का अधिकार है और वह किसी का निजी संसाधन नही हो सकता। इस स्थिति से मुकाबला करने के लिये हम लोगों ने वे संगठन बनाना शुरू किये जो यह दावा पेश करेंगे कि 'पइन' की व्यवस्थायें लोकविद्या पर चलती है और सरकार के विशेषज्ञों के पास उन्हें संचालित करने का ज्ञान नही है। सरकार के रखरखाव व संचालन का पैसा दें किंतु खर्च हम करेंगे। तीन प्रमुख बातें मिलकर हमारे इस प्रयास को परिभाषित करती हैं। पहली यह कि 'पइन' व्यवस्था में लोकविद्या का दावा पेश करना और विश्वविद्यालय को खुले मंच पर शास्त्रार्थकी चुनौती। दूसरा 'पइन' की मरम्मत के लिये संघर्ष। उतना ही संघर्ष उठाना जितना हमारी ताकत अनुमति देती हो। एन.जी.ओ. या सरकार के तौर तरीकों से असहमत होते हुये भी उनके द्वारा किये जा रहे मरम्मत के कार्यों का विरोध न करना। तीसरा पानी की राजनीति करना यानि पानी के सवाल पर चुनाव प्रभावित करने की क्षमता तैयार करना। हम उम्मीद करते हैं कि इन प्रक्रियाओं के साथ हम लोकविद्या और लोकविद्याधर समाज की प्रतिष्ठा को एक राजनैतिक मुद्दा बनाने में सफल होंगे।

बुनकरों के ज्ञान का शोषण

एहसान अली वाराणसी के बुनकर हैं और लोकविद्या समूह तथा विद्या आश्रम के साथ शुरू से जुड़े हुये हैं। इन्होंने कहा कि पिछले 17 वर्षों में, यानि विश्व व्यापार संगठन बनने के बाद से, बुनकरों की हालत लगातार खराब होती गई है। तमाम बुनकर सूरत जैसी जगहों पर चले गये और बहुत से यहीं पर ठेला लगाने लग गये और राजगीर हो गये। हम लोगों ने लोकविद्या दृष्किोण से स्थिति में दखल लेने के लिये 'कारीगर नजरिया' नाम का एक छोटा सा अखबार निकालना शुरू किया। इस अखबार के साथ वाराणसी के तमाम क्षेत्रों में और आस-पास के जिलों में कारीगरों के बीच जाना शुरू किया। उनसे बात करके उन्हीं की बात इस अखबार में छापते हैं। अखबार का नजरिया यह है कि कारीगर की विद्या का शोषण होता

है। मेहनत की मजदूरी भी कम मिलती है और उसके ज्ञान का तो कुछ भी नही मिलता। ध्यान रहे बिनकारी में आज मजदूरी मोटे काम से भी कम है। हम चाहेंगे कि ज्यादा से ज्यादा बुनकर साथी लोकविद्या जन आंदोलन के साथ जुड़ें और कारीगरों के बीच संगठन का काम तेजी से बढ़े। हम चाहते हैं कि बुनकर समाज भारतीय किसान यूनियन के साथ मिलकर काम करे। तभी आगे जाकर हमें कुछ कामयाबी मिल पायेगी।

संगठन की जरूरत

झारखण्ड में देवघर और हजारीबाग में लोकविद्या पर बैठकें हुई। **देवघर** के **दिलीप** ने आगे कार्य की पहल अपने हाथ में ली। उन्होंने कहा कि लोकविद्या के सैद्धान्तिक पहलुओं पर कल काफी चर्चा हुई, सम्मेलन में उपस्थित सभी सहभागियों ने इसके सैद्धान्तिक पक्ष को स्वीकृति भी दी कहीं किसी भी प्रकार का विरोधाभास नजर नहीं आया।

आज के सत्र में संगठन कार्यक्रम पर चर्चा हो रही है। लोकविद्याधर समाज के लोगों द्वारा जनांदोलन किये जा रहे हैं जो विभिन्न नामों से हैं। मसलन विस्थापन मोर्चा, बुनकर समाज, मछुआरा समाज, किसान आंदोलन जंगल पर अधिकार का आंदोलन। हमको चाहिए कि देश के विभिन्न हिस्सों में चलाये जा रहे टुकड़ों-टुकड़ों में जनांदोलनों को एक प्लेटफार्म पर लाकर बड़ी जमात बनायें। और तभी बड़ा प्लेटफार्म बनेगा तभी असरकार साबित होंगे। अन्यथा हमारे आंदोलन जो छिन्न-भिन्न हैं इससे सरकार पर दबाव नहीं बना पायेंगे।

लोकविद्या जनांदोलन को अपना संगठन भी बनाना होगा। अभी तक हम राज्य स्तर पर कुछ बुद्धिजीवियों और समाज सेवियों के बीच अपनी बात पहुँचा पाये हैं। अब जरूरत है इसको एक स्वरूप प्रदान किया जाय। इसका स्वरूप कैसा होगा? इसके प्रमुख कौन होंगे? गाँव स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक संगठन का क्या स्वरूप होगा अध्यक्षीय प्रणाली होगी,संयोजन समीति बनेगी, कितने लोगों की कमेटी बनेगी इसके पूरे ढाँचे को एक नियम के तहत लाना होगा। इसके लिये ड्राफ्ट कमेटी (प्रारूप समिति) का गठन करना होगा फिर इस पर किसी प्रक्रिया के तहत इस पर चर्चा करके फाइनल रुप देना होगा।

कार्यक्रम के स्तर पर आज जो बातें प्रथम सत्र में डा. चित्रा सहस्त्रबुद्धे द्वारा उठायी गयी हैं लोकविद्या आजीविका कानून बनाकर इस समाज को रोजगार से जोड़ने की इन बातों को लेकर गाँव से लेकर देश तक में कार्यक्रम बनाकर सरकार को ज्ञापन दिया जाना चाहिए। विस्थापितों, खुदरा एवं फुटपाथ दुकानदारों, मछुआरों ,बुनकरों एवं किसानों के बीच जाकर उनको संगठित करने और उनके लिये संघर्ष की रूप रेखा तैयार करने हेतु भी हमें इन सभी लोगों को अपने कार्यक्रमों से जोड़ना होगा साथ ही स्थानीय स्तर पर अगर लोकविद्याधर समाज के लोगों के साथ उसकी आजीविका पर प्रहार होता है तो इसके लिये उनको संगठित करके उनके लिये संघर्ष का कार्यक्रम बनाना होगा। ये सभी प्रयास इस आंदोलन के लिये सहायक सिद्ध होंगे।

सुपाड़ी के कारीगर

रीवां से आये समाजवादी साथी **सुभाष** ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि यदि लोकविद्या की धरोहर बचानी है, यदि इस देश की महान लोकविद्याधर प्रतिभाओं को संजोकर रखना है तो यह अत्यंत आवश्यक है कि उन्हें शासकीय कर्मचारियों जैसा वेतन मिले। उन्होंने थोड़े विस्तार में सुपारी से खिलौने बनाने की रीवां क्षेत्र की विद्या का वर्णन किया। बताया कि किस तरह वहाँ के ये अद्भुत कारीगर समर्थन के अभाव में धीरे-धीरे करके टूटते चले गये और अब यह हुनर लुप्त होने के कगार पर है। अगर इन कारीगरों को शासकीय कर्मचारियों की तनख्वाहे मिल रही होती तो यह कला आज और नये और उन्नत शिखर छू रही होती।

एक दूर के गाँव की आवाज

पन्नेलाल यादव सिंगरौली के सुदूर ग्रामीण क्षेत्र के धरी गाँव के रहने वाले हैं। उन्होंने लोकविद्याधर समाज के शोषण की चर्चा की। इस बात की विशेष चर्चा की कि किस तरह से स्थानीय स्तर के सरकारी कर्मचारी और ग्राम प्रधान लोगों की समस्या के प्रति सर्वथा संवेदनहीन होते हैं और विकास कार्यों के लिए आया अधिकांश पैसा हड़प जाते हैं।

विस्थापन से मुकाबला और लोकविद्या मंच

लक्ष्मण प्रसाद ने कहा कि **वाराणसी** में किसानों के बीच संगठन का कार्य भारतीय किसान यूनियन के नेतृत्व में चल रहा। कई गाँवों में लोकविद्या पर शिविरों का आयोजन किया गया और किसतरह किसान समाज की शक्ति लोकविद्या में है इस बात को बराबर सामने रखा और विस्थापन, बिजली, पानी, शिक्षा और बाजार में फसल के दाम के संघर्षों को किसान के ज्ञान, लोकविद्या के बल पर जीवन संगठित करने के अधिकारों के संघर्ष बन जा सकते हैं इस बात को सफाई से रखा गया। वाराणसी के आसपास शहर के विस्तार के चलते जगह-जगह किसानों की जमीन अधिग्रहित की जा रही हैं। कही गंगा एक्सप्रेस वे, ट्रांसपोर्ट नगर बनाने, लोटस पार्क बनाने, सांस्कृतिक नगर बनाने, रिहायशी कालोनी बनाने, कूड़ा डम्पिंग प्लांट बनाने, सीवर प्लांट बनाने आदि के लिये किसानों को विस्थापित किया जा रहा है। शहरों से दुकानदारों को विस्थापित किया जा रहा है। चीन के वस्त्र,धागों व मशीनों के चलते बुनकर विस्थापित हो रहे हैं। इन सभी विस्थापित लोकविद्याधर समाजों के लिये एक लोकविद्या मंच को बनाने का प्रयास किया गया है, जहाँ से वे अपने लोकविद्या अधिकारों के संघर्ष छेड़ सकें।

•

सान्ध्यकालीन मंथन

पहले दिन के सत्रों में लोकविद्या विचार और लोकविद्या जन आंदोलन के कई पहलुओं पर चर्चा हुई थी। लोकविद्या की प्रतिष्ठा, लोकविद्या जन आंदोलन की महात्मा गांधी के पूर्ण स्वराज के आंदोलन से निरंतरता, लोकविद्याधर समाज के विस्थापन और बेरोजगारी के प्रश्न, लोकविद्याधर समाज की एकता, लोकविद्या जीवनयापन कानून और लोकविद्या राजनीति की परिकल्पना जैसे विषयों पर लोकविद्या विचार के विकास से जुड़े हुये कार्यकर्त्ताओं ने अपने वक्तव्य दिये थे। थोड़ी बहुत चर्चा भी हुई थी। इन्हीं विषयों पर दिन भर हुई बातचीत की समीक्षा के लिये शाम को बैठक रखी गई थी जो लगभग 7 बजे से 9 बजे तक चली। करीब 35-40 व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया। दो प्रमुख चिंतायें उभरकर आईं। पहली यह कि दिन में जो चर्चायें हुई वे अधिकांश वैसी ही बातों की रहीं जैसी बातें और जन आंदोलन भी करते हैं तो लोकविद्या जन आंदोलनों में फर्क क्या है? दूसरी यह कि लोकविद्याधर समाज के अंदर विभाजन और ऊँच-नीच की बात न होने से ऐसा प्रतीत होता है कि लोकविद्या जन आंदोलन में सबसे अधिक शोषित और उत्पीड़ित तबकों को जगह नही मिल सकेगी। पहली चिंता के संदर्भ में यह कहा गया कि इस जन आंदोलन के केन्द्र में विद्या का प्रश्न है। विद्या के शोषण और गैर पढ़े-लिखे लोगों के ज्ञानी होने का दावा और उनके ज्ञान आंदोलन की बात अन्य जन आंदोलन नहीं करते हैं। लोकविद्या जन आंदोलन की यह मान्यता है कि इसी अंतर के चलते इस आंदोलन में सूचना युग में जनता का मुक्ति का आंदोलन बनने की संभावना है। जहाँ तक लोकविद्याधर समाज के अंदर के विभाजन के सवाल हैं उनपर चर्चा का संदर्भ कैसा होना चाहिये इसके बारे में लोकविद्या कार्यकर्त्ताओं ने कुछ कहा। उनका कहना था कि ये बातें लोकविद्याधर समाज की एकता के वास्तविक संदर्भो में ही हो सकती है। और जब ऐसा ही होता है उसका लाभ पश्चिमीकृत वर्गों को मिलता है, शासक वर्गों को मिलता है। लोकविद्याधर समाज की गरीबी और असम्मान का कारण इस समाज के बाहर है, पश्चिमी ज्ञान और पश्चिमीकृत समाज की हमलावर नीतियों में है, न कि उसके अंदर के विभाजन में। इसके अलावा ज्ञान के दर्शन पर मुख्य चर्चा हुई। विश्वविद्यालयों में विशेषज्ञता हासिल करने पर जोर होता है इसलिये वहाँ पढ़ाई करने के बाद दर्शन की बातें समझने में लोगों को कठिनाई आती है। लोकविद्या और आधुनिक संगठित ज्ञान के बीच अंतर को समझने में भी यही कठिनाई बार-बार सामने आई। इन बातों पर चर्चा हुई कि लोकविद्या का रूप व्यक्तिगत ज्ञान का न होकर सामुदायिक और सामाजिक होने का है। लोकविद्या का घर कोई परिसर न होकर समाज होता है, लोक होता है, सामान्य जीवन होता है। इसके मूल्य और तर्क का विधान अमूर्त अथवा मानवहित से स्वतंत्र नही होता। इसमें सत्य की कोई ऐसी कल्पना नही होती जिसका समाज से कोई संबंध ही न हो। इन सभी अर्थों में और तमाम बातों में आधुनिक ज्ञान लोकविद्या से एकदम भिन्न है। यह सायंकालीन चर्चा बहुत अच्छी हुई।कम से कम 15 भागीदारों ने तर्क के साथ अपनी दृष्टि प्रस्तुत की। इससे दिन में हुई चर्चाओं को एक विस्तृत और प्रासंगिक फलक मिला।

दूसरे दिन शाम को दिन में हुई संघर्ष और संगठन की चर्चाओं की समीक्षा के लिये लोग इकट्ठा हुये। इस समीक्षा के दौरान आगे की नीति पर भी चर्चा होनी थी। **गिरीश** ने बात शुरू करते हुये कहा कि हर जगह स्थानीय संघर्षों में सत्ता के दबाव के चलते अथवा और लोग बात को ठीक से समझें इसके लिये राजनीतिक मसले खड़े होते हैं। इन मसलों की समझ ठीक से विकसित होना जरूरी है तभी अपने संघर्ष और संगठन सही रास्तों पर आगे बढ़ सकते हैं।

प्रमिला पाठक ने गया शहर की पेयजल की समस्या सरकार कैसे हल करना चाहती है इसके बारे में बताया यह कि किस तरह वैज्ञानिक और राजनीतिक लोग एक होकर ऐसी व्यवस्थायें बनाने में लगे हैं जो सर्वथा जनहित के विरोध में है किंतु इस बात को उजागर करने वालों के तर्क लोग नहीं समझ पा रहे हैं। इसमें कोई रास्ता निकालना जरूरी है।

सुनील ने कहा कि लोकविद्या जन आंदोलन के लिये दो बातें उभर कर सामने आई हैं। पहली जगह-जगह चलने वाले संघर्षों से संबन्धित है। ये संघर्ष विस्थापन, पानी, जंगल आदि से संबंधित रहते हैं। और लोकविद्या की बात भी रहती है। सवाल इन संघर्षों के बीच कड़ी बनाने का है जिसमें लोकविद्या दृष्टिकोण विशेष महत्व रखता है। दूसरी यह कि उन आंदोलनों में जिनमें लाखों की तादात में लोग इकट्ठा होते हैं लोकविद्या दृष्टिकोण लेकर कैसे शिरकत की जाय? किसान आंदोलन के साथ हम ये करते रहे हैं। अन्य आंदोलनों के साथ यह होना चाहिये।

दिलीप ने कहा कि विस्थापन एक बड़ा सत्य है। जमीन से या रोजगार से विस्थापित लोग मुआवजा लेकर सड़क पर आ जाते हैं, वहीं कुछ करने लगते हैं और फिर वहाँ से भी विस्थापित होते हैं। इस प्रक्रिया की सही राजनीतिक दृष्टि लोकविद्या के कोण से ही बन सकती है। लोकविद्या जन आंदोलन को ऐसा राजनीतिक कोण विकसित करना होगा।

विजय कुमार ने संगठन बनाने पर बल दिया। उन्होंने कहा कि अलग-अलग जगह के संघर्षों का जब आपस में तालमेल होगा तब एक दूसरे को ताकत मिलेगी। लुटेरापन बहुत तेजी से बढ़ रहा है और नये-नये हथकण्डे इस्तेमाल कर रहा है। यह जरूरी है कि हम उनसे एक कदम आगे बढ़कर सोचें, उसके बिना इनसे मुकाबला नहीं हो सकता। जहाँ हैं वहीं खड़े रहने से संतोष नहीं किया जा सकता, वैसा करेंगे तो खत्म हो जायेंगे। इस अधिवेशन से लोकविद्या जन आंदोलन के संगठन का एक रूप तय होना चाहिये।

चित्रा सहस्त्रबुद्धे ने लोकविद्या जन आंदोलन लोकविद्या का दावा कैसे पेश करें इस पर बात की। खाद्य और वस्त्र की समाज की मांग स्त्रियां पूरी कर सकती हैं, किसान पूरे समाज के लिये आवश्यक अनाज व अन्य सामग्री कृषि से पैदा कर सकता है, नौजवानों को उन्हें जो आता है उसके बल पर पक्का काम मिलना चाहिये, इसी में खुशहाली और उन्नति के बीज हैं ये दावे पेश होने चाहिये। इन समुदायों के आंदोलनों के साथ इन दावों पर चर्चा होनी चाहिये, उनके सामने ये रखा जाना चाहिये कि उनके खुद के और समाज के दूरगामी हितों की साधना का रास्ता यही है।

प्रो. मोहिनी मलिक ने तर्क पेश किये कि लोकविद्या जन आंदोलन वालों को कुछ मुकद्दमे लड़ने चाहिये। जिन समस्याओं पर संघर्ष हैं उनके केस तैयार किये जाने चाहिये। इन्हीं मुकद्दमों में लोकविद्या के सैद्धांतिक और व्यावहारिक तर्क पेश किये जाने चाहिये। हो सकता है कि मुकद्दमा हार जायें पर यह एक बड़ा मौका देता है देश के सामने अपना दावा पेश करने का,अपने तर्क पेश करने का, अपनी बात कहने का।

पार्थ सारथि राय ने कहा कि जगह-जगह चलने वाले संघर्षों को आपस में जुड़ने की जरूरत तो जरूर है लेकिन यह बहुत कठिन काम है, शायद सीधे नहीं हो सकता। ऐसे प्रयास कई हो चुके हैं और नतीजे उत्साहवर्धक नहीं हैं।जो किया जाना चाहिये वह यह है कि इन संघर्षों से जुड़े लोकविद्या के वे मसले जो राष्ट्रीय स्तर पर महत्व के हैं उन्हें लोकविद्या जन आंदोलन की ओर से राष्ट्रीय स्तर पर उठाया जाना चाहिये। तब इससे वे स्थानीय संघर्ष से जुड़ेंगे जो इन मुद्दों से वास्ता रखते हैं।

रवि शेखर ने लोकविद्या जन आंदोलन की एक समन्वय समिति बनाने का समर्थन किया।इन्होंने कहा कि समाज में वर्तमान संस्थायें, वे अदालतें हों या और संस्थायें हों इसी समाज के बनने की प्रक्रिया में आकार लिया है। इसलिये लोकविद्याधर समाज और बाकी लोगों के बीच जो भेद और भेद-भाव है वह इन संस्थाओं में संरचनागत स्तर पर समाहित है।इन संस्थाओं में अथवा उनके मार्फत लोकविद्या का दावा नहीं पेश हो सकता। लोकविद्या के इन सम्मेलनों को वाराणसी और हैदराबाद के अलावा और जगहों पर होने की जरूरत है। बिहार में होने चाहिये, झारखण्ड में होने चाहिये। उन जगहों पर होने चाहिये जहाँ संघर्ष चल रहे हैं। उन संघर्षों के आयाम कभी हमसे मिलते-जुलते हैं और कभी नहीं भी मिलते हैं। लोकविद्याधर समाज की एकता के प्रयासों को बल देने के लिये एक समन्वय समिति जरूरी है।

सुनील यादव ने आंदोलनों के और संघर्षों के बीच एकता स्थापित करने में लोकविद्या के महत्व को बताते हुये कहा कि यह एकता उसूलों पर होनी चाहिये, एक आलोचनात्मक दृष्टि के विकास के साथ होनी चाहिये न कि केवल संख्या बल को महत्व दिया जाना चाहिये। उन्होंने कहा कि जातिगत अंतरों को न मानना, महिलाओं को सम्मान की दृष्टि से देखना यह सब हमने आंदोलनों से सीखा है, किसी किताब में नहीं पढ़ाया जाता। लेकिन यदि कोई आंदोलन जैसे किसान आंदोलन परम्परा के नाम पर खाप पंचायतों द्वारा महिलाओं पर जारी फतवे का समर्थन करता है तो उसके प्रति आलोचना की दृष्टि अपनानी होगी। राजनीति के प्रश्न पर भी अपना साफ नजरिया कायम किये बगैर और उसे जनता के बीच ले जाये बगैर, इस विषय पर टालमटोल करने से कोई बात बनती नहीं है। आशा है कि लोकविद्या के साथी इन बातों को साफ करेंगे।

अवधेश ने कहा कि लोकविद्या का दावा समाज के सामने पेश किया जाना चाहिये। सिंगरौली में थोड़ा ऐसा हुआ है। अभी हाल में लोकविद्या का विचार लेकर हम ट्रेड यूनियन संगठनों के बीच भी गये। समाज के हर तबके के सामने यह बात जानी चाहिये इससे लोकविद्या की राजनीति विकसित करने में और लोकविद्याधर समाज में अपनी शक्ति की अनुभूति बढ़ाने में मदद मिलती है।

रीवा से आये समाजवादी साथी **सुभाष** ने जोर देकर पटरी के व्यवसाइयों का पक्ष रखा। उनके उजाड़ और उनकी जिंदगी के सवालों को लोकविद्या जन आंदोलन में शामिल करने का आग्रह किया।

इस सांध्यकालीन विचार विमर्श के अंत में **सुनील** ने कहा कि मोटे तौर पर तीन बातें उभर कर आयीं— मुद्दों,समिति और सम्मेलनों के बारे में। लोकविद्या जीवनयापन अधिकार, हर परिवार में कम से कम एक नौकरी क्योंकि सब कोई न कोई काम करना जानते हैं, जिसमें आय सरकारी नौकरी के बराबर हो। स्त्रियों के लिये खाद्य और वस्त्र के क्षेत्र आरक्षित हों। छोटे दुकानदारों के मसले को गंभीरता से लिया जाय केवल उनके कष्ट और विस्थापन के कोण से ही नहीं, तो लोकविद्या आधारित किसी नये समाज की रचना में उनकी भूमिका को लेकर भी। किसानों की उपज के जायज दाम और प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण की बात। ये कुछ प्रमुख मुद्दे थे जो उभरकर आये। जाहिर है इसमें कुछ और जोड़े जा सकते हैं। मुद्दों की फेहरिस्त लोकविद्या जन आंदोलन के सार को समझने में काफी मददगार हो सकती है। लोकविद्या जन आंदोलन संयोजन समिति बनाने के लिये एक छोटा समूह तय कर लें जो एक प्रस्ताव लेकर कल अधिवेशन के सामने आये। अगले एक साल में कहां-कहां सम्मेलन हो सकते हैं यह भी इस प्रस्ताव में शामिल हो।

इस सांध्यकालीन सत्र के अंत में अधिवेशन का प्रस्ताव तैयार करने के लिये एक छोटी सी समिति बना दी गयी। जिसमें चित्रा सहस्त्रबुद्धे, प्रेमलता सिंह (वाराणसी), विजय कुमार (दरभंगा), अवधेश (सिंगरौली), कृष्णराजुलु (हैदराबाद), मोहनराव (चिराला), संजीव (इंदौर) और रवि शेखर (लखनऊ) चयनित किये गये। **कृष्णराजुलु** इस सत्र के **अध्यक्ष** थे उन्होंने बहस को समापित किया।

अधिवेशन का पहला दिन

लोकविद्या और लोकविद्या जन आन्दोलन का विचार

लोकविद्या का दावा पेश होना है यह लोकविद्याधर समाज का ज्ञान आन्दोलन है

विद्या आश्रम की समन्वयक तथा लोकविद्या जन आंदोलन के पहले अधिवेशन की आयोजन समिति की संयोजिका **चित्रा सहस्त्रबुद्धे** ने सभी प्रतिभागियों का स्वागत करते हुये अधिवेशन का परिचय या कहिये विषय प्रस्थापना की शुरूआत की। अधिवेशन के सत्र संचालक समूह की ओर से एकता सिंह ने उनका परिचय दिया- 30 साल से भी अधिक वर्षों से उनकी सामाजिक सक्रियता के दौर की कड़ियों महिला आंदोलन, नारी हस्तकला उद्योग समिति के मार्फत विद्या आधारित कारीगर और महिला संगठन और लोकविद्या प्रतिष्ठा अभियान का उल्लेख किया।

चित्रा जी ने यह कहते हुये शुरू किया कि अधिवेशन के इन तीन दिन हम लोग लोकविद्या के बल पर एक नये विचार, एक नये दर्शन को आकार देने की सभी संभावनाओं पर विचार करेंगे और उस दिशा में कुछ कार्यक्रम बनाने के प्रयास करेंगे। लोकविद्या उन लोगों की विद्या है जिन्होंने कभी विश्वविद्यालय का मुँह नहीं देखा। ये किसान, कारीगर, आदिवासी,छोटे-छोटे दुकानदार और महिलायें हैं। ये सब लोग तमाम किस्म के उत्पादन और रचनात्मक कार्यों से जुड़े हुये हैं और जो अपना ही नहीं पूरे समाज के जीवन को चला रहे हैं। ये लोग इस प्रकृति और सृष्टि की निरंतरता बनाये रखने में बहुत बड़ा योगदान करते हैं। ये समाज लोकविद्याधर समाज है। लोकविद्या जन आंदोलन लोकविद्याधर समाज की ओर से और उन लोगों की ओर से जो उनके संघर्षों में शामिल हैं और उन संघर्षों को लोकविद्या विचार से अनुप्राणित करने की कोशिश कर रहे हैं, एक दावा देश करने का प्रयास है। हम जानते हैं कि पर्यावरण के विनाश और गैर-बराबरी के बढ़ते पैमाने दुनिया भर में चिंता के विषय के रूप में उभरे हैं। इन्हें समझने और समझाने के लिये मोटी-मोटी किताबें लिखी जाती हैं और तर्कों का विस्तृत जाल बिछाया जाता है। वैश्वीकरण, उपभोक्ता संस्कृति तथा तीव्र गति के औद्योगिकरण में कारणों को देखते हुये तरह-तरह के सुधार पेश किये जाते हैं। किंतु लोकविद्या जन आंदोलन का दृष्टिकोण यह है कि जिस ज्ञान के आधारभूत सहयोग के चलते यह स्थिति पैदा हुई है उसी ज्ञान क्षेत्र से हल ढूंढने के प्रयासों का नाकाम होना लाजमी है। अगर हल कहीं है तो लोकविद्या के आधार पर समाज के पुर्निर्माण के विचार में है और वह भी तब जब इसकी बागडोर लोकविद्याधर समाज के हाथ में हो। पर्यावरण नष्ट होना बंद हो जायेगा, गैर बराबरी दूर होगी, एक नई खुशहाल प्रकृति से मित्रता रखने वाली दुनिया बनेगी। इस प्रक्रिया में मनुष्य का मनुष्य को देखने का नजरिया बदल जायेगा, एक नये मनुष्य का निर्माण करेंगे हम जिसका आत्मबल लोकविद्या में है। इस बात पर हम अगले तीन दिन विस्तार से चर्चा करेंगे।

लोकविद्या जन आंदोलन एक ज्ञान आंदोलन है। यह लोकविद्या द्वारा समाज में ज्ञान का दर्जा हासिल करने के संघर्ष की शुरूआत है। यह संघर्ष उन सब संघर्षों की शुरूआत करता है जो लोकविद्याधर समाज के लिये बराबरी और सम्मान हासिल करने के संघर्ष हैं।

लोकविद्या पर कार्य की शुरूआत 1995 से हुई और पहला बड़ा कार्यक्रम 1998 में लोकविद्या महाधिवेशन के रूप में वाराणसी में ही राजघाट में गांधी विद्या संस्थान के परिसर में हुआ। पाँच दिन तक देशभर से आये लगभग डेढ़ हजार भागीदारों ने तरह-तरह के विषयों पर चर्चा की। पढ़े-लिखे लोगों को लोकविद्या को ज्ञान मानने में दिक्कत आती है। उन्हें जल्दी नहीं समझ में आता कि जो कालेज और विश्वविद्यालय नहीं गया वह ज्ञानी कैसा। और जो लोग उसे कमोबेश ज्ञान मान भी लेते हैं वे यह खयाल रखते हैं कि लोकविद्याधर समाज इस ज्ञान को बचा नहीं पा रहा है, इसे बचाने की जरूरत है जिससे वह समाज अच्छे ढंग से चल सके जिसमें वे रहते हैं। लोकविद्या जन आंदोलन का यह दृष्टिकोण नहीं है, इसका दृष्टिकोण यह है कि समाज की बागडोर लोकविद्याधर समाज के हाथ में सौंपिये। वे समाज के हर व्यक्ति को भोजन, कपड़ा और रहने की व्यवस्था देने की क्षमता रखते हैं, उन्हें समाज में असम्मान और गैर-बराबरी की जिल्लत भरी जिंदगी से मुक्त करने की क्षमता रखते हैं।

जब से इंटरनेट की व्यवस्थाएँ आई हैं, अमीर लोगों तथा पढ़े-लिखे लोगों के लिये ऐसे मौके तैयार हुये कि वे लोकविद्या का शोषण करके अपनी जेबें भर सकें। अब स्थिति यह है कि कला और उद्योग के हर क्षेत्र में शुरू यहीं से किया जाता है कि स्थानीय समाज में बड़ी उपलब्धियाँ हैं, पहले नजर उन्हीं पर डाली जाय। वे वहाँ से कुछ उठाकर ले जाना चाहते हैं और उसके एवज में उन्हें वापस कुछ नहीं देना चाहते। ये लोग लोकविद्या के बल पर उसी समाज के लिये सम्मान, बराबरी या बदहाली से निजात में कोई रुचि नहीं रखते बल्कि ऐसी सोच की अवहेलना ही करते हैं। दूसरी तरफ लोकविद्या जन आंदोलन का विचार है जो दुनिया भर में चल रहे संघर्षों में लोकविद्या विचार के आधार पर आपस में जुड़ने की कड़ी खोज रहा है। चारों तरफ संघर्ष ही संघर्ष की स्थिति है। किसानों के संघर्ष हैं, आदिवासियों के संघर्ष हैं और छोटे दुकानदारों व पटरी व्यवसाइयों के संघर्ष हैं। महिलाओं के ऐसे संगठित संघर्ष न दिखाई दें लेकिन एक लम्बा सिलसिला है और जगह-जगह पर वह समय-समय पर फूट पड़ता है। कारीगरों के भी कोई बड़े संगठित संघर्ष न दिखाई दें लेकिन आप अगर उनकी बस्तियों में चले जायं तो एक धधकता हुआ संसार, आज की व्यवस्था के प्रति जबर्दस्त आक्रोश आप महसूस करेंगे। और देशों में चले जायें- दक्षिण अमेरिका में धरती माँ के अधिकार के नाम पर आंदोलन चल रहा है, यूरोप में ज्ञान के पूँजीवाद के खिलाफ ज्ञान मुक्ति का छात्र आंदोलन चल रहा है, सभी जगह के किसान और आदिवासी विस्थापन के खिलाफ और उनके संसाधन छीने जाने के खिलाफ संघर्षरत हैं। जब हम लोकविद्या में मनुष्य की सक्रियता के स्रोत देखते हैं तो ये सारे संघर्ष हमें ज्ञान आंदोलन नजर आते हैं। ऐसे आंदोलन नजर आते हैं जो खुलेआम ये कह रहे हो कि उनसे वह सब कुछ छीना जा रहा है जिसका आधार लेकर वे लोकविद्या के बल पर अपना रोजगार करते हैं, अपनी जिंदगी चलाते हैं। विस्थापन, बाजार से बेदखली, नई व विदेशी प्रौद्योगिकियों की सरकार की नीति में तरफदारी, यह सब यही करता है और फिर लोकविद्याधर समाज के नौजवानों को उनके ज्ञान और उनके औजारों का इस्तेमाल सिखाता है जिससे कि वह हमेशा पिछड़ा रहे और उन पर निर्भर रहे। इसलिये लोकविद्या दृष्टिकोण से देखने पर ये सारे संघर्ष तरह-तरह की नई संभावनाओं को सामने लाते हैं और बुनियादी परिवर्तन की राजनीति खड़ी करने का आधार बनते हैं, अगर हम ये दावा पेश करें कि हम लोकविद्या के आधार पर एक बेहतर दुनिया बनाने की क्षमता रखते हैं। इसी दावे के साथ आपसी एकता के सूत्र मुखर होते हैं। तब आदिवासी जंगलों में, किसान गाँवों में, कारीगर बस्तियों में और महिलायें घरों में कैद न दिखाई देकर आपस में एक कड़ी से जुड़ते हुये दिखते हैं। यह उनकी ताकत की कड़ी है, लोकविद्या की कड़ी है। लोकविद्या जन आंदोलन इसी एकता के निर्माण का दावा पेश करता है। दुनिया भर में चल रहे लोकविद्याधर समाजों के तरह-तरह के संघर्षों के बीच नया बिरादराना बनाने की पेशकश करता है।

आशा है आगामी तीन दिन इन बातों पर हम चर्चा करेंगे और रास्ता खोज निकालेंगे।

पूर्वाग्रहों को ध्वस्त करने का साहस जुटायें

के. के. सुरेन्द्रन पुणे में रहते हैं। वे भौतिक शास्त्र और गणित के अध्येता हैं तथा एक दार्शनिक हैं। वे लोकविद्या विचार और विद्या आश्रम के निर्माण समूह के शुरू से सदस्य हैं। उन्होंने अपने वक्तव्य में लोकविद्या प्रतिष्ठा, रचनात्मक कार्यक्रम और कोई नयी चीज बनाने के विचारों को एक दूसरे के साथ जोड़ा। उन्होंने कहा कि जैसे गांधी जी ने 1930 और 1942 के बीच रचनात्मक कार्यक्रमों की पहल ली, उसी तरह लोकविद्या जन आंदोलन को अपने रचनात्मक कार्यक्रम ईजाद करने की जरूरत है। हमें 'नई दुनिया' या नई विश्व व्यवस्था के बारे में सोचने में दिक्कत आती है क्योंकि हम प्रयोग करने से पीछे हटते हैं, अपनी बनाई वस्तुओं और व्यवस्थाओं को तोड़ने का साहस नहीं जुटा पाते। यह हम कोई नया विचार कैसे अपनाते हैं इससे संबंधित होता है। हम सामान्यतः यह क्रिया जो हमारे अंदर बराबर चलती रहती है उससे अनभिज्ञ रहते हैं और सोचते हैं कि नई चीजें कोई बनाकर देता है। लेकिन एक छोटे बच्चे को देखें जिसका पेट भरा हुआ है वह कैसे खिलौनों से खेलता है, पूरी गंभीरता से कैसे नई-नई कहानियाँ बनाता है? कैसे पहले की वास्तविकताओं को भंग करके अपनी नई दुनिया बनाता है? और किसान को देखिये जो बरसात का इंतजार करता रहता है, जो होती नहीं है। पिछले साल का तरीका काम नहीं करेगा इसलिये इस साल वह नये तरीके का प्रयोग कर रहा होता है। वह कुछ नया सीखता रहता है और जिस मिट्टी को वह सोचता था कि वह बड़ी अच्छी तरह समझता है उसके साथ अपनी दोस्ती के नवीनीकरण की तैयारी करता है। वह वास्तव में नई खोज कर रहा है, अपने ज्ञान को विस्तार दे रहा है। मैं इसे 'किसानियत' कहता हूँ। लोकविद्या जन आंदोलन एक ऐसा ज्ञान आंदोलन है, जिसमें लोकविद्याधर समाज के सभी व्यक्तियों को अपने 'बचपन' और अपनी 'किसानियत' (सबकी अपनी कला विरासत) को जाग्रत करना होगा। मेरे ख्याल से अभी रचनात्मक कार्यक्रम की बात करना लोकविद्या जन आंदोलन में एक नई बात है। हमें पता नहीं है यह कैसे होगा? हमे अपने-अपने पूर्वाग्रहों को ध्वस्त करने का साहस जुटाना होगा।

लोकविद्याधर समाज की एकता में ही प्रतिष्ठा है

सुनील सहस्त्रबुद्धे विज्ञान और दर्शन के विद्यार्थी रहे हैं और शुरू से किसान आंदोलन के कार्यकर्त्ता रहे हैं। लोकविद्या विचार के निर्माण और विद्या आश्रम के निर्माण में केन्द्रीय भूमिका रही है। उन्होंने कहा कि लोकविद्या की प्रतिष्ठा लोकविद्याधर समाज की एकता और लोकविद्या के राजनैतिक दर्शन का सार्वजनिक तौर पर आकार लेना ये एक ही बातें हैं। इनमें से एक हो और दूसरा नही ऐसा नही हो सकता। ऐसा नही हो सकता कि लोकविद्या की समाज में प्रतिष्ठा हो जाय और लोकविद्याधर समाज में एकता न हो या लोकविद्याधर समाज के राजनैतिक दर्शन का उदय हो लेकिन न लोकविद्याधर समाज की एकता दिखाई दे और न लोकविद्या को समाज में प्रतिष्ठा ही हो।

उन्होंने कहा कि लोकविद्या के नाम से काम की शुरुआत 1995 में यहीं वाराणसी में एक बैठक से हुई। उस बैठक की तैयारी का जो पर्चा लिखा गया था उसका शीर्षक था 'लोकविद्या प्रतिष्ठा प्रयास'। तब से लोकविद्या पर विचार और कार्य विभिन्न चरणों से होकर गुजरता हुआ आज लोकविद्या जन आंदोलन के मुकाम तक पहुँचा है। इस जन आंदोलन की कल्पना लोकविद्याधर समाज की एकता के प्रयासों और लोकविद्या के राजनीतिक दर्शन की बहसों के अंतर्गत बनी। और हमने यह पाया कि लोकविद्या की प्रतिष्ठा उसका राजनैतिक दर्शन या फिर लोकविद्याधर समाज की एकता के लिये हम जो काम करते रहे हैं वह एक ही काम है। और वह इस लोकविद्या जन आंदोलन की भूमि तैयार करता है। इन तीनों बातों की समानता केवल व्यावहारिक समानता नहीं है। सिद्धान्तों के स्तर पर भी यह दिखाया जा सकता है। विस्तार से एक तर्क संगत दार्शनिक व्याख्या की जा सकती है जो इस समानता को स्थापित करे।

पुरस्कार देकर, प्रमाणपत्र देकर, निर्यात लायक बताकर, हाट बाजार लगवाकर या यहां-वहां संस्थाओं द्वारा कारीगरों या किसानों को विद्यालयों में पढ़ाने के लिये बुलाकर लोकविद्या को प्रतिष्ठा देने का आभास दिया जा सकता है। इसमें कोई वास्तविक प्रतिष्ठा नही है। नंगे की आभूषण से नही, वस्त्रों से ही इज्जत बहाली हो सकती है लोकविद्या की प्रतिष्ठा तो तभी मानी जायेगी जब लोकविद्याधर समाज के सारे लोग अपने विद्या के बल पर दो वक्त की रोटी के संघर्षों से आगे बढ़कर एक खुशहाल और बराबरी की जिंदगी जी रहे होंगे। यह कैसे संभव होगा जब तक उस नई दुनिया का दर्शन नही होगा और जब तक पूरा लोकविद्याधर समाज एक होकर उस नई दुनिया को बनाने के संघर्षों को नहीं खड़ा करेगा।

आज विस्थापन के जरिये लोकविद्याधर समाज पर एक विस्तृत हमला हो रहा है। विस्थापन का शिकार केवल लोकविद्याधर समाज है। जब से आधुनिक औद्योगिकीकरण शुरू हुआ है तभी से लोकविद्याधर समाज विस्थापित हो रहा है। अपने रोजगार से, अपनी जमीन से, अपनी विद्या के इस्तेमाल से, अपने घर से, हर जगह से उसे खदेड़ दिया जाता है। कारखाने बनाने के लिये,शहर के विस्तार के लिये, रिहायशी कालोनियाँ बनाने के लिये, शहर की गंदगी फेकने के लिये, पयर्टन विकास के लिये, तरह-तरह के कारणों से विस्थापन होता है। यह उपनिवेशीकरण ही है। इन सब में किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटे-छोटे दुकानदार का उन संसाधनों से रिश्ता तोड़ दिया जाता है जिनके सहारे वे लोकविद्या के बल पर अपनी जिंदगी और समाज चलाना जानते हैं। फिर जिस भी काम में वे जायेंगे सबसे निचले स्तर पर जायेंगे और सबसे कम मजदूरी पायेंगे। अगर इन सब तबकों के बीच कुछ समान है, जो उनकी ताकत का स्रोत भी है तो वह लोकविद्या ही है।लोकविद्याधर समाज लोकविद्या के उस राजनैतिक दर्शन का इंतजार कर रहा है जो उसे एकता के सूत्र दे। लोकविद्या जन आंदोलन इसी दिशा में एक शुरूआत है।

लोकविद्या के आर्थिक मूल्यों (बाजार दाम) के संघर्ष, लोकविद्याधर तबकों के सामाजिक सम्मान के प्रयास, उनके सांस्कृतिक और दार्शनिक विचारों एवं अभ्यासों के पक्षधर, अभियान और संगठन कार्य ये सभी एक दूसरे की पूरक प्रक्रियायें हैं और लोकविद्या के राजनैतिक दर्शन के मार्फत ही अपने अगले चरण में प्रवेश करती हैं। यह चरण लोकविद्या का दावा पेश करने का है। यह दावा पेश करने का है कि आधुनिक औद्योगिकीकरण, साइंस ने प्रकृति को नष्ट किया है, शोषण, उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद को जन्म दिया है, इससे निजात केवल लोकविद्या के बल पर ही मिल सकती है। लोकविद्या जन आंदोलन इसी राजनैतिक दर्शन के निर्माण,लोकविद्याधर समाज की व्यापक एकता और लोकविद्या की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा का आंदोलन है।

अधिवेशन में लगा एक पोस्टर

किसान-कारीगर और लोकविद्या का दावा

पारमिता वाराणसी की रहने वाली हैं और लोकविद्या विचार से जुड़ी हुई हैं। गांधी ने चरखा को पूर्ण स्वराज के आंदोलन का प्रतीक बनाया क्योंकि उनकी समझ में आ गया था कि अंग्रेजों ने जो देश को गुलाम बनाया था वो किसान और कारीगर की एकजुटता को तोड़कर बनाया था। जब तक चरखा और करघा मिलकर किसान और कारीगर की एकजुटता के प्रतिबिम्ब हैं, जब तक चरखा और करघा को जोड़ा नहीं जायेगा तब तक पूर्ण स्वराज का रास्ता नहीं बनता है। आज हमारे बुनकर की स्थिति यह है कि वह एक दिन में मनरेगा के मजदूर से भी

कम कमा पाता है। किसान और कारीगर दोनों ही आज बाजार के मोहताज हो गये हैं। बाजार में पूँजी का वर्चस्व है। पूँजी ही विद्या, संसाधन और ज्ञान पर नियंत्रण कर बैठी है। जब तक किसान और कारीगर मिलकर पूँजी की व्यवस्था को चुनौती नहीं देते और अपने ज्ञान की प्रतिष्ठा के लिये आगे नहीं आते तब तक कोई रास्ता नहीं है। लोकविद्याधर समाज को आगे बढ़कर लोकविद्या के बल पर खुद को प्रतिष्ठित करने के रास्ते बनाने होंगे।

'पूर्ण स्वराज' आन्दोलन की निरन्तरता

गिरीश सहस्त्रबुद्धे नागपुर रहते हैं, भौतिक शास्त्र के प्राध्यापक हैं महाराष्ट्र के किसान आंदोलन में इनकी सक्रिय भूमिका रही है।शुरू से लोकविद्या समूह के अंग हैं और विद्या आश्रम निर्माण में अहम भूमिका रखते हैं। इन्होंने कहा कि लोकविद्या जन आंदोलन को गांधी जी के नेतृत्व के 'पूर्ण स्वराज' के आंदोलनों की निरंतरता में देखा जाना चाहिये। पूर्ण स्वराज का अर्थ होता है कि इस देश को कैसे आगे बढ़ाना है और कैसे चलाया जाना है यह हम जानते हैं। बाहर से हमें यह बताये जाने की जरूरत नही है। इसी आंदोलन का रूपांतरण 'भारत छोड़ो' आंदोलन में हुआ। आजादी के बाद जो लोग सत्ता पर काबिज हुये उन्होंने गांधी जी के विचारों से ठीक विपरीत दिशा अपनायी। तथाकथित समाजवाद के नाम पर बड़े उद्योगों, साइंस और बड़े-बड़े विद्या संस्थानों को प्राथमिकता दी गयी। ये सब जनता से दूर थे और 10 वर्षों में ही यह साफ हो गया कि यह सब 'पूर्ण स्वराज' की कल्पना से ठीक विपरीत था।

मुश्किल से 10 साल और बीते और देश में एक बड़े किसान आंदोलन ने आकार लेना शुरू किया। पिछली शताब्दी के आखिरी तीन दशक यह आंदोलन बहुत जोर-शोर से चला। इस आंदोलन ने प्रमुख रूप से तीन बातें कहीं जो गांधी जी की निरंतरता में ही समझी जा सकती है। पहली बात यह कि ग्रामीण गरीबी पूर्णतया कृत्रिम है। बड़े विद्या संस्थानों और बड़े विचारकों के दबदबे के चलते यह विचार पनप चुका था कि ग्रामीण गरीबी का कारण लोगों के अनाड़ीपन में है। मतलब यह कि वे कैसे जीना है ये जानते नही हैं, उत्पादकता की बात नहीं समझते हैं, खेती का देश में क्या स्थान है यह नहीं समझते हैं, बड़े उद्योगों का महत्व समझते नही है, ऐसे अनाड़ी लोग हमारे गाँवों में भरे पड़े हैं। इस विचार को पनपाने के लिये कई राजनीतिक हथकंडे अपनाये गये, जिसमें सबसे बड़ा हथकण्डा ग्रामीण समाज को विभाजित करने का था। किसान आंदोलन ने इन सब पर सीधा प्रहार किया और कहा कि यह एकदम झूठ बात है कि हमारी गरीबी के लिये हम जिम्मेदार हैं। हमारी गरीबी के लिये आप जिम्मेदार हैं, आपकी नीतियां जिम्मेदार हैं। आपको हमारे शोषण पर आधारित व्यवस्था बनानी है इसके लिये आप नीतियां बनाते हैं और हमें समाजवाद की झूठी भाषा से बहलाते हैं और विभाजित करते हैं। दूसरी बात किसान आंदोलन ने यह कही कि किसानी कैसे करनी है और विकास कैसे करना है यह किसान जानता है, आप नहीं जानते। किसान के पास अपनी विद्या है, उसे उसने संजोया है, विकसित किया है और पूरी तरह विपरीत परिस्थितियों के बावजूद उसी के बल पर जीता है। जाहिर है कि गांधी जी की बात ही एक सशक्त तरीके से कही जा रही थी। कई जगहों पर किसान आंदोलन ने खुलकर यह दावा किया कि वे गांधी की निरंतरता में ही हैं। तीसरी बात यह थी कि एक पूरी तरह नई एकता स्थापित हुई। ग्रामीण समाज को खेतिहर मजदूर, छोटा किसान, बड़ा किसान और तमाम तबकों के बीच बांट कर रखा था, जिसे आज हम सोची-समझी साजिश कह सकते हैं, इनका किसान आंदोलन ने सीधा उत्तर दिया। उस समय आंदोलन की हर बैठक में, हर रिपोर्ट में यह बात सफाई से कही जाती थी कि जब हम किसान की बात करते हैं तो पूरे ग्रामीण समाज की बात कर रहे होते हैं- खेतिहर मजदूर, कारीगर सब इसमें शामिल होते हैं । इसका कारण यों साफ किया कि गाँव का वैभव कृषि में है तथा कृषि उत्पाद को दाम न देकर जब आप गाँव से उसका वैभव छीनते हैं तो पूरे ग्रामीण समाज पर इसका प्रतिकूल असर पड़ता है,यह सभी के शोषण का जरिया बन जाता है।

सूचना युग के साथ में शोषण करने वालों के हाथ में लूट के नये औजार आ गये। जो किसान की विद्या को हमेशा नकारते थे उन्हें गाँव में ज्ञान का भण्डार दिखाई देने लगा। नया लूट का तरीका वित्त और ज्ञान के प्रबंधन का है। अब केवल श्रम नहीं बल्कि विद्या का शोषण भी सीधे-सीधे होना है। इसका जवाब लोकविद्या में है। किसान आंदोलन के पूरे ग्रामीण समाज की एकता के विचार की अगली कड़ी लोकविद्या जन आंदोलन में पूरे लोकविद्याधर समाज की एकता के विचार में है। चूँकि व्यवस्था हर तरह की लोकविद्या के शोषण के प्रबंधन की है इससे मुकाबला भी पूरे लोकविद्याधर समाज की एकता के जरिये होना है। इस एकता की ओर बढ़ने का सूत्र लोकविद्या विचार में है। इस दिशा में शुरू करने का मतलब यह है कि यह दावा पेश किया जाय कि आज की व्यवस्था चलाने वाले न हमारे बारे में जानते हैं न हमारी आवश्यकताओं के बारे में जानते हैं और न ही उसके बारे में चिंतित हैं। इसलिये हम अपना जीवन खुद तय करने की दिशा में जा रहे हैं। 'सम्पूर्ण स्वराज' का यही अर्थ है। लोकविद्या जन आंदोलन की कसौटी लोकविद्याधर समाज की एकता में है, इस बात में है कि लोकविद्याधर समाज के विभिन्न तबके किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटा दुकानदार और महिलायें अपना-अपना जो कुछ है देते हुये कितना लोकविद्याधर समाज का हिस्सा बनते हैं।

गांधी-लोहिया-जेपी से निरंतरता

अजय कुमार बिहार के वैशाली जिले के एक गाँव के रहने वाले हैं। इनकी पृष्ठभूमि बिहार आन्दोलन और समाजवादी विचार की है।इन्होंने कहा कि पूर्ण स्वराज की कल्पना गांधी जी ने बनाई थी। आजादी के लड़ाई में दो तरह के लोग थे एक स्वराज के लिए संघर्ष करने वाले और दूसरे सत्ता के लिये। गांधी जी इन प्रवृत्तियों को समझते थे। वे जानते थे कि राजनैतिक गुलामी से पूर्ण मुक्ति के बाद भी आर्थिक गुलामी जारी रह सकती है। और उससे मुक्ति के लिये पूर्ण स्वराज की बात की थी। पूर्ण स्वराज का अर्थ था गाँव के लोगों का अपना राज। गांधी जी ने उसे बांधा भी था- उपभोग की सीमा को बांधा था। गाँव की वस्तुओं के उपयोग की प्राथमिकता पर जोर दिया था। किसान कारीगर के सामान का इस्तेमाल करेगा और कारीगर किसान के उत्पाद का इस्तेमाल करेगा तो हम दोबारा गुलाम नही होंगे। चरखा तकनीकी विकास और प्रयोग का प्रतीक था। ऐसी तकनीक का विकास किया जाना था जो मनुष्य की सहयोगी हो, उसकी बेदखली का साधन नहीं। नमक सत्याग्रह लोकविद्याधर समाज को संगठित करने का एक बड़ा प्रयास था। यह वह संगठन था जो पूँजीवाद के बढ़ते कदमों को रोक पाता लेकिन एसा हो नही पाया। बाद के दिनों में लोहिया आये, उन्होने चौखम्भा राज की बात की। आगे चलकर जे.पी. ने भी यह कहा कि गांधी का पूर्ण स्वराज ही मेरी सम्पूर्ण क्रांति है और उन्होंने जनता सरकार की बात की थी। लेकिन लोकविद्याधर समाज की भागीदारी नहीं बन सकी और आज भी हम आर्थिक दृष्टि से गुलाम हैं। लोकविद्या जन आंदोलन को यहीं से अपना धागा उठाने की जरूरत है। इसी कड़ी में अपने को जोडकर गांधी के पूर्ण स्वराज आंदोलन को उसके मुकाम तक ले जाने का प्रयास करना होगा।

लोकविद्या दर्शन-कुछ विचार

रवीन्द्र कुमार पाठक ने यह कहते हुये शुरू किया कि सीखना तो मनुष्य जन्म से ही शुरू कर देता है और यदि स्थापित मान्यताओं और प्रचारित विचारों से अलग और नया कुछ सीखना हो तो पहले की बातों को भूलना भी पड़ता है। लोकविद्या की समझ बनने और बनाने के विचार के साथ भी कुछ ऐसा ही है। परम्परागत ज्ञान, परम्परागत विद्या या परम्परा के विचारों का जो घेरा पहले से रहा उससे निकलकर कुछ नया सोचने का प्रयास लोकविद्या में है। लोकविद्या की प्रतिष्ठा की बात यदि वैचारिक चौखटों और अमूर्त बहसों तक सीमित रह जाय तो कोई वास्तविक प्रतिष्ठा तो होगी नही बल्कि एक काल्पनिक लोक का निर्माण होगा। प्रतिष्ठा की बात थोड़ी सफाई से समझनी होगी। आजकल अर्थ यानि धन से प्रतिष्ठा का प्रचलन है। पुरस्कारों में भी बड़ी-बड़ी धनराशि दी जाती है।विद्याधर समाज की प्रतिष्ठा में पहले से निरंतरता, प्रयोग और नई खोजों (इनोवेशन), इन सबकी प्रतिष्ठा शामिल होनी चाहिए। विशिष्ट विद्याओं और लोकविद्या के बीच एक द्वंद्व होता है। परम्परागत विद्या का ही एक रूप आयुर्वेद लें तो पायेंगे कि इसमें भी विशिष्ट जनों की चिकित्सा और स्वास्थ्य रक्षा के तौर-तरीके सीखने का प्रकार अलग है।

लोकविद्या के विचार को एक दर्शन के रूप में स्थापित करना भी जरूरी है। सभी लोग ज्ञानी हैं, यह मानना नितांत आवश्यक है। विभिन्न संदर्भो को मिलाकर किया गया चिंतन, उनके आपसी संबंधों और आधारों की व्याख्या ही तो दर्शन है। इसलिये लोकविद्या की बात उसमें पीछे से निरंतरता, प्रयोगों और नई खोजों की बात करनी होगी। यह सब समाज की क्षमताओं की बातें हैं, उनके अधिकार और सम्मान की बातें इनसे जुड़ी हुई हैं। इसके विपरीत विचारों के तर्कों और औचित्य की बात करनी होगी, वही तो दर्शन होगा। यदि हम विशिष्ट लोगों से अलग हटकर, संसाधनों और विद्याओं के उनके अमानवीय दावों की वास्तविकता को पहचानकर बहुसंख्यक लोगों का साथ देते हैं, उनके लिए और उनकी तरफ से सोचते हैं, तो उनके संसाधनों और विद्याओं के अधिकार और सम्मान की बात तो करनी ही होगी।

विशिष्ट ज्ञान अगर विशेष अधिकार की शर्तें रखता है तो वह निश्चित ही अमान्य है और यदि विशेष अधिकार का का आग्रह नहीं रखता और सामान्य जन की सेवा में समर्पित है तो वह भी सन्मान्य है।

केवल लोकविद्याधर समाज ही विस्थापन के शिकार हैं

वाराणसी के **लक्ष्मण प्रसाद मौर्य** ने कहा कि आज के इस तथाकथित विकास के युग में संगठित विद्या और लोकविद्या कें बीच का अंतर बढ़ता जा रहा है। एक तरफ बेशुमार दौलत और राष्ट्रीय संसाधनों पर कब्जा है तो दूसरी तरफ शोषण और विस्थापन। विकास का सारा लाभ संगठित विद्या के क्षेत्र को है तथा विनाश लोकविद्याधर समाज का है। निम्नलिखित क्षेत्रों को विकास के रूप में देखा व माना जा रहा है— रेलवे व हवाई यातायात,बन्दरगाहों व हवाई अड्डों का निर्माण, हाइटेक सिटी व माल बाजार, आलीशान कालोनियां, पाँच सितारा होटल, विशेष आर्थिक क्षेत्र, पर्यटन, बिजलीघरों व परमाणु ऊर्जा के कार्यक्रम, अन्तरिक्ष कार्यक्रम, सूचना एवं प्रौद्योगिकी, बायो एवं नैनो टेक्नोलाजी इत्यादि। किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटे दुकानदार तथा सामान्य महिलाओं का कोई भी मानवीय संबंध उपरोक्त क्षेत्रों से नहीं जुड़ पाता। अगर इन क्षेत्रों से किसी प्रकार का संबंध जुड़ता है तो वह है शोषण और विस्थापन का।

आज के विकास की कीमत लोकविद्याधर समाज चुका रहा है। चाहे उत्पादन का कम दाम लेकर अथवा अपने रोजी-रोटी के साधनों से उजड़कर, चाहे जल, जमीन और जंगल से विस्थापित होकर, अपने बाजार से विस्थापित होकर और यहां तक कि सम्मानपूर्वक जिंदगी जीने से वंचित रह कर। पूरे देश में पावर प्लांट, एल्यूमिनियम प्लांट, परमाणु ऊर्जा प्लांट, खनिज सम्पदा वाले क्षेत्रों में खनन कार्य, आयरन और स्टील प्लांट तथा और भी तरह-तरह के प्लांटों को खड़ा करने के लिए आदिवासियों और समुद्रतट पर रहने वाले मछुआरों, किसानों, कारीगरों को विस्थापित किया जा रहा है। सेज बनाने के लिए, एक्सप्रेस वे बनाने के लिए, रेलपटरियां बिछाने के लिए तथाकथित विकास कार्यक्रम के नामपर कालोनियां बनाने से लेकर हाइटेक सिटी बनाने तक और बाँध बनाने के काम से लेकर शहरों के विस्तार करने तक किसानों की जमीन हड़पकर उन्हें विस्थापित करने की मुहिम चलायी जा रही है।

मैंने कभी नहीं देखा कि लोकविद्याधर समाज को छोड़कर अन्य किसी को भी विस्थापन का शिकार होना पड़ा हो। यह भी नहीं देखा कि व्यापारी वर्ग विस्थापन की समस्या से त्रस्त है। यह भी नहीं देखा कि सरकारी कर्मचारी विस्थापित होकर मनरेगा मजदूर या अन्य किसी प्रकार के मजदूर बन गये हों। संस्थागत और संगठित विद्या के लोग कहीं विस्थापित नहीं हुए। विस्थापन के शिकार तो लोकविद्या जगत के लोग ही हो रहे हैं। लोकविद्या जन आंदोलन विस्थापन के विरुद्ध संघर्ष कर सकता है— लोकविद्या को आधार बनाकर। जिसके पास जो विद्या है उसी के बल पर उसका रोजी-रोटी कमाने का अधिकार बनता है। संगठित विद्या और लोकविद्या में कोई भी छोटा या बड़ा नहीं है।

विस्थापन और राजनीति

रविशेखर लखनऊ में रहते हैं और नौजवानों के बीच समाज के गंभीर सवालों पर चर्चा के लिए एक डिबेट सोटायटी चलाते हैं। मानवाधिकार के सवालों पर विशेष कार्य करते हैं। उन्होंने कहा कि विस्थापन राजनीति का विषय है। विकास के नाम पर हमसे वोट मांगा है इसलिये विकास एक राजनीति का विषय है। इस विकास के परिणाम के रूप में विस्थापन है और यह भी राजनीति का विषय है। हमें यह सोचना है कि लोकविद्याधर समाज को इस राजनीति का जवाब कैसे देना है? मैं एक उदाहरण देना चाहूंगा। आज से 20-25 वर्ष पहले की बात है जब उच्च शिक्षा के विभाग का नाम बदलकर मानव संसाधन विभाग रखा गया। यह केवल नाम बदलने की घटना मात्र नहीं है। नाम के साथ-साथ यह नीतियों में बदलाव की घटना थी जिसकी पहचान करने में हमारा समाज चूक गया। इस नाम बदलाव के चलते हमारे नौजवान छात्र सरकार के लिये संसाधन बन गये। ये उनकी राजनीति को आगे बढ़ाने के संसाधन बन गये। विश्वविद्यालयों में जहां समाजशास्त्र की पढ़ाई हो रही है, या ग्राम विकास, प्रबंधन या मीडिया की पढ़ाई हो रही है, उनके जो पाठ्यक्रम तैयार किये जा रहे हैं वे इस बात को ध्यान में रखकर बनाये जा रहे हैं कि आने वाले समय में जो विस्थापन होगा उसे कैसे आसान बनाया जा सकता है। विश्वविद्यालय से निकले ये युवा विस्थापितों को कैसे अच्छी तरह समझा सकें कि यह विस्थापन उनके लिये कितना अच्छा है, कितना अच्छा पैकेज लेकर आ रहा है और इससे इनकार नही करना चाहिये। सिंगरौली में जिस तरह एस्सार और अन्य कम्पनियाँ अपने पैर फैलाती जा रही है, इन कम्पनियों की मदद के लिये ऐसे ही छात्रों को संसाधन के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। लोकविद्या विचार में बेहतर राजनीति का विकल्प है तो हमारे लिये यह परीक्षा की घड़ी है।

लोकविद्या के दर्शन में एक बेहतर राजनीति की संभावना है तो क्या भविष्य में हम राजनीति में जगह की खोज कर रहे हैं? इस प्रश्न पर भी विचार होना चाहिये।

देसी स्त्री आन्दोलन की शुरुआत

विद्या आश्रम की **प्रेमलता सिंह** ने कहा कि किसान, कारीगर, छोटे-दुकानदार और आदिवासी हमारे समाज में 80 फीसदी हैं इनमें आधी संख्या महिलाओं की है। महिलायें अपने समाज की विद्या को तो जानती ही हैं साथ-साथ अपने विशिष्ट ज्ञान की स्वामिनी भी हैं। किसान समाज की महिलाएं अनाज उगाने से लेकर साफ-सफाई, खाने योग्य बनाने और अगली फसल के लिए बीज रूप में सुरक्षित रखने का ज्ञान रखती हैं। कारीगर समाज जिसमें बुनकरी का बड़ा हिस्सा है, बिना महिलाओं के सहयोग से बुनकरी सम्भव ही नहीं हो सकती। छोटे दुकानदार को देखें तो ठेलों और खोमचों की तैयारी महिलाएं ही करती हैं और पुरुष बाजार करते हैं। आदिवासी समाज की स्थिति भी यही है। इसके अतिरिक्त तरह-तरह के खाद्य पदार्थ यथा पापड़, बड़ी, आचार, किस्म-किस्म के नमकीन और मिठाईयां एवं पहनने, ओढ़ने, बिछाने के वस्त्र, उनको कलात्मक बनाने, आवश्यकतानुकूल अन्य आवश्यक वस्तुओं को निर्मित करने की विद्या व कौशल महिलाओं के पास है। बाजार का आधे से ज्यादा हिस्सा खाने-पहनने की वस्तुओं से पटा है। मनुष्य की आवश्यकता भोजन और वस्त्र है। यह चिंतन का विषय है कि विद्या व कौशल से समृद्ध रहने के बावजूद महिलायें बेरोजगार-बदहाल क्यों हैं?

हर उद्योग के संचालन के लिए पूँजी और बाजार भी चाहिए जो राज्य सत्ता की नीतियों पर निर्भर है। लेकिन ज्ञान भी प्रमुख आधार है जो स्त्रियों के पास भरपूर है। पूँजी और बाजार हमारे हाथ में नहीं है। बाजार पर वित्तिय पूँजी (पूँजी से पूँजी पैदा करना) राज कर रही है। वित्तीय पूँजी सभी संसाधनों को अपनी गिरफ्त में लेकर हमारी प्रौद्योगिकी,

श्रम और हमारे समाज की पूँजी को अपने लाभ के लिये लूट ले रही है। वित्तीय पूँजी का सामाजिक न्याय-अन्याय से कोई सरोकार नहीं होता। नग्नता की हद तक मुनाफा कमाना ही उसका गुण-धर्म है, और सभी राजनीतिक आर्थिक व्यवस्थाएं इस पूँजी की सेवादार होती हैं। इसीलिए किसान को उसके उत्पादन का मूल्य नही मिलता, कारीगर अपने निर्मित वस्तुओं का मोल नहीं कर पाता और महिलाओं के हाथ में उद्योग नहीं होता है। जबकि बाजार में बिकने वाली वस्तुएं स्थानीय कारीगरों और महिलाओं से ही बनवाई जाती हैं। उनकी गुणवत्ता परखी जाती है और बड़ी कम्पनियां अपना मुहर लगाकर ऊँचे दामों पर बेचती हैं। ऐसी शोषणकारी व्यवस्था के खिलाफ लोकविद्याधर समाज (किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटे दुकानदार, स्त्रियां) का संघर्ष जारी है, जिसमें स्त्रियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। हम यहां स्त्रियों के लिए समाज में बराबरी और खुशहाली की जिन्दगी लौटाने के रास्तों के निर्माण के लिए यह मांग करते हैं कि लोकविद्या जीवनयापन कानून के तहत या स्वतंत्र तौर पर खाद्य पदार्थ निर्माण और वस्त्र निर्माण के क्षेत्र महिलाओं के लिए आरक्षित हों। आज विस्थापन के खिलाफ संघर्षों में महिलाओं की भागीदारी और नेतृत्व कहीं बढ़े हुए पैमाने पर नजर आता है। कहीं यह एक देसी स्त्री आन्दोलन की शुरुआत तो नहीं?

लोकविद्या जीवनयापन अधिकार कानून

बी. कृष्णाराजुलु हैदराबाद रहते है। भौतिक शास्त्र के प्राध्यापक रहे हैं और किसान आंदोलन में सक्रिय रहे हैं। वे लोकविद्या विचार और विद्या आश्रम के निर्माताओं में हैं तथा आंध्र प्रदेश में लोकविद्या जन आंदोलन के प्रमुख हैं। उन्होंने कहा कि एक ऐसे कानून की जरूरत है जो हर व्यक्ति द्वारा लोकविद्या पर आधारित जीवनयापन का रास्ता चुनने के अधिकार को एक मौलिक अधिकार की मान्यता दे। उन्होंने दो उदाहरणों से अपनी बात साफ की। एक-कुछ साल पहले पश्चिम बंगाल की सरकार ने टाटा कम्पनी के लिये मोटर का कारखाना बनाने के लिये सिंगूर में किसानों की जमीनें अधिग्रहित की थी। तब सिंगूर के किसानों ने एक बड़ा आंदोलन किया और मांग की कि जो किसान अपनी जमीन नही देना चाहते उनकी जमीनें वापस की जाये। ममता बैनर्जी व अन्य नेताओं ने यह तर्क दिया था कि कारखाने के लिये जितनी जमीन जरूरी है उतनी ही जमीन अधिग्रहित की जाये और वह भी तब जब किसान अपनी जमीन देने को तैयार हो। जो जमीन नही देना चाहते हैं उससे अतिरिक्त जमीनें लेना नाजायज है और उनकी जमीनें वापस होनी चाहिये। इन किसानों में से कई ने यह कहा कि वे किसी नौकरी या मुआवजे की जगह किसानी ही करना चाहेंगे जिसका ज्ञान वे रखते हैं। और दूसरा हाल के वर्षो में छत्तीसगढ़ के आदिवासी अपने उन जंगलों और पहाड़ों की सुरक्षा के लिये आंदोलनरत हैं। जिनका अधिग्रहण एल्युमिनियम के कारखाने लगाने के लिये प्रस्तावित है। उनका कहना है कि ये जंगल और ये पहाड़ उनका घर है तथा उनकी जिंदगी और जीविका के संसाधन उन्हें यहीं से मिलते हैं। वे हर किस्म के विस्थापन का विरोध करते हैं क्योंकि जैसा कि वे सदियों से कर रहे हैं वे इन्हीं जंगलों और पहाड़ों में रहना चाहते है।

इन दोनों उदाहरणों से यह पता चलता है कि बहुत से लोग लोकविद्या आधारित जीवन बिताना चाहते हैं और इसे अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं उनके जमीन या जंगलों को जबर्दस्ती छीन लेना उन्हें अपनी जिंदगी और जीविका से वंचित करता है। चूँकि सबको अपनी जिंदगी और जीविका का मौलिक अधिकार है, इसलिये लोगों को लोकविद्या और लोकविद्या आधारित जीविका से विस्थापित करना गैर कानूनी करार दिया जाना चाहिये। इसे मूल अधिकारों का उलंघन माना जाना चाहिये। इस तरह के सारे विस्थापनों को रोकने के लिये और लोकविद्या आधारित जीवन के अधिकार की रक्षा के लिये एक ऐसा कानून बनना चाहिये जो इस अधिकार को एक मौलिक अधिकार की मान्यता देता है। इसे हम लोकविद्या जीवनयापन कानून का अधिकार कहते हैं। लोकविद्या जन आंदोलन को यह मांग करनी चाहिये कि संसद जल्दी से जल्दी ऐसा कानून बनाये।

लोकविद्या अधिकार के संघर्ष ज्ञान-राजनीति खड़ी करेंगे

सुनील ने कहा कि लोकविद्या जीवनयापन कानून पर बहस में यह बहस नहीं होनी चाहिये कि यह कानून बन जायेगा तो क्या होगा। अगर यह बहस होगी तो नतीजा हमेशा यही निकलेगा कि कानून बन जाने से कुछ भी नहीं होगा, क्योंकि ऐसा कानून तो इसी व्यवस्था में बनेगा। वैसे भी जीने के अधिकार का कानून पहले से ही है तो लोकविद्या के आधार पर जीने का अधिकार मांगना कौन-सा इजाफा कर देगा। उसके केवल एक अंश की ही बात करेगा। फिर भी हम यह कहना चाहते हैं कि लोकविद्या के आधार पर जीवनयापन के अधिकार को एक मौलिक कानूनी अधिकार का दर्जा मिले। यह इसलिये क्योंकि अधिकारों की लड़ाई से राजनीति खड़ी होती है और उस अधिकार का सार-तत्व क्या है उससे उस राजनीति के वैचारिक पक्ष मजबूत होते हैं।

लोकविद्या जीवनयापन अधिकार एक मौलिक संवैधानिक अधिकार के रूप में प्रतिष्ठित हो इसके लिये किये जाने वाले संघर्ष एक ज्ञान की राजनीति खड़ी करेंगे, वह लोकविद्याधर समाज की ज्ञान की राजनीति होगी, वह लोकविद्या राजनीति होगी।

इसलिए यह मांग और इसके लिए किये जाने वाले संघर्ष लोकविद्या जन आंदोलन के बेहद महत्वपूर्ण अंग होंगे।

व्यावहारिक नतीजे प्राप्त करें

शिव प्रसाद अधिवक्ता हैं और लम्बे समय से मार्क्सवादी समूहों के साथ शामिल रहे हैं। उन्होंने कहा कि इस देश में एक जबर्दस्त नौकरशाही है, जो अंगेजों ने बनाई थी और अभी भी वैसी की वैसी है। इसका काम है लोक संघर्षों और लोकहित को दबाकर प्रभुत्वशाली वर्गों के हितों की रक्षा करना। लोकविद्या जन आंदोलन यदि अपने श्रम और विद्या के बल पर जीने वाले मेहनतकश लोगों का आंदोलन बनता है तो उसे आगे बढ़ पाने के लिए इस नौकरशाही को ध्वस्त करना ही पड़ेगा। लोकविद्या को महत्व कैसे मिले इसके लिए उसे कानून के दायरे में ले आना चाहिए। किसान अपनी जमीन के बल पर जीने का अधिकार चाहते हैं, आदिवासी उन वनों पर अधिकार चाहते हैं जहाँ रहकर और जिनका इस्तेमाल करके अपनी विद्या के बल पर जी सकते हैं। ये सब लाकविद्या के बल पर जीने के अधिकार की बातें हैं। ऐसे कई बुनियादी अधिकार पहले से संविधान में हैं जैसे जीवन का अधिकार, आजीविका का अधिकार, शिक्षा का अधिकार आदि, लेकिन इनके व्यावहारिक नतीजे लोगों को नहीं मिल पाते। लोकविद्या को माध्यम बनाकर शायद ये नतीजे प्राप्त किये जा सकें, यह प्रयोग किया जाना चाहिए।

नयी रोजगार नीति की जरूरत

नारायण राव हैदराबाद के हैं। ट्रेड यूनियन आंदोलन से आते हैं और लोकविद्या समूह के अंग हैं। इन्होंने लोकविद्याधर समाज में रोजगार के प्रश्न पर बोलते हुये इस बात पर जोर दिया कि सरकार इन हुनरमंद ज्ञानी लोगों को बेरोजगार होने पर केवल मनरेगा में मिट्टी फेंकने का काम और एक अकुशल मजदूर की मजदूरी दे यह उनका शोषण है, अन्याय है और अपमान है। वैश्वीकरण के दौर में किस तरह किसान, कारीगर, आदिवासी, मछुआरे, छोटे दुकानदार सभी अपने-अपने कामों से, बाजार से और संसाधनों से बेदखल हुये हैं यह उन्होंने विस्तार से बताया। इनकी तादाद इतनी ज्यादा है कि किसी स्कीम या प्रोग्राम से इन्हें राहत नहीं दी जा सकती। सवाल देश की नीति का है, रोजगार नीति का है। यह पहचानने का है कि इस विशाल जन समुदाय और देश का विकास तभी संभव है जब इन सबके ज्ञान, हुनर और क्षमताओं का योगदान देश को हो। इसके लिये दो बातें जरूरी हैं। पहली मनरेगा के अंतर्गत हर व्यक्ति को जिस काम की जानकारी वह रखता है, वही काम करने के लिये न्यूनतम मजदूरी पर काम दिया जाय। उनका उत्पादन सहकारिता विभागों द्वारा ग्रामीण भारत के उत्थान के लिये बाजारों में बेचा जाय। दूसरा यह कि हम सबको लोकविद्या आधारित उत्पाद ही खरीदने चाहिये। इन दोनों बातों के लिये लोकविद्या जन आंदोलन द्वारा अभियान चलाये जाने चाहिये।

हर परिवार में कम से कम एक पक्की नौकरी

विद्या आश्रम के **दिलीप कुमार** ने कहा कि— बताये कोई लोग क्यूं खटें दिन-रात। यह सवाल मेरे जेहन में लगातार आता रहता है। जिसका उत्तर अब तक न मिला। लोकविद्या जन आन्दोलन के पहले अधिवेशन में यह सवाल सबके सामने रख रहा हूँ। पहले किसान हुआ या कृषि प्रोफेसर? कृषि करने वाला किसान हुआ तो कृषि पर क्रमबद्ध ढंग से किताब लिखकर, विश्वविद्यालय की चहारदीवारी में बन्द विद्या पढ़ने वाला कृषि प्रोफेसर हुआ। जो इस कृषि का विशेष ज्ञानी होने का ऊँचा वेतन पाता है और किसान आधा पेट खाकर भी इतनी लगन से यह काम करता है। लोकहित का दर्शन व अपनी विद्या के साथ घात न करने का सहज ज्ञान उसे ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है। कामचोरी, विद्या से घात करके साफ-साफ बच जाने का गुर विश्वविद्यालय पढ़ने वाले में ही पाया जाता है। इन सब विभागों के बाहर और न जाने कितने तरह के लोग समाज की सेवा लगन के साथ कर रहे हैं। जितने भी कार्य हैं वे किसान के, कारीगर, आदिवासी के लगे बिना पूरे नहीं होते।

जैसे बुनकरी को देखिए, हाथ की बुनाई और करघा गाँव-गाँव में था। उसके निर्माता और सामान स्थानीय था, मिस्त्री, कारीगर भी उसी में थे। पावरलूम दूर शहर की फैक्ट्री में बना। उसके निर्माता वैज्ञानिक और इन्जीनियर हुए। बनारस में पावरलूम चलता है। यहीं आस-पास गाँव के किसानी से जुड़े लोग कोई मोकादम तो कोई बुनकर के रूप में चलाता है। ये बहुत पढ़े-लिखे नहीं होते हैं। यदि ये न रहें तो इन्जीनियर के भरोसे यह पावरलूम बिगड़ने पर खड़ा रह जाता। पावर-लूम आया। गाँव-गाँव के कारीगर सस्ते मजदूर बने। बाजार कपड़े से भर गया इसका लाभ पावरलूम के ज्ञान को जानने वाले विज्ञानी और पूँजीपति उठाये। और अपमान वाली व्यवस्था से मुक्ति दिलाने वाला चमत्कारी विज्ञान खुद उसी स्थान पर बैठकर लोकविद्याधर समाज को उजाड़-पछाड़कर छोटे-छोटे हर कारोबार पर पूँजी के बूते कब्जा करता जा रहा है। हम शहर के करीब गाँव में रहने वाले लोग अपने को आदिवासी से अलग न देखें। नदी,वन पहाड़ जरिया था उनको अपनी रोजी-रोटी पाने का। नहर, बिजली, कोयला, लोहा, सीमेंट उद्योग ने उनको विस्थापन के सिवाय कुछ न दिया।

स्टील कारखाने में वैज्ञानिक, इन्जीनियर अन्य लोग उस ताम-झाम के बिना छटांकभर लोहा नहीं बना सकते जिसे आदिवासी अगरिया अपनी विद्या से बना देता है। आज यदि वह लोहा बनाने वाली विद्या से जीने का प्रयास करता है, पत्थर, कोयला, रेत, पानी पर विद्यागत कार्य का अधिकार माँगता है तो अपराधी कहा जाता है। दूसरी तरफ साइंस के विद्यावान स्टील प्लांट के लिए पहाड़, वन, नदी का मनमाना दोहन किये जा रहे हैं। खुद रेलगाड़ी के ए. सी. में चल रहे हैं और आदिवासी समाज रेल की सीट पर बैठने में भी सहमता है। शौचालय के पास जमीन पर बैठे दुत्कार खाता यहाँ से वहाँ भटक रहा है। पढ़े-लिखे को सब अधिकार आरक्षित है। आदिवासी अपनी रोजी-रोटी के संसाधन की तरफ ताक भी नहीं सकता। यह अन्याय है। किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटे दुकानदार और महिलायें जो जानती हैं वही उनकी विद्या है। उस काम को वह बेहतरीन ढंग से करते हैं।

इस लोकविद्याधर समाज को अपनी विद्या के बूते रोजी-रोटी चलाने का अधिकार व संसाधन कानूनन आरक्षित हो। ज्ञान में गैर-बराबरी पशुवत है। वक्ता और कर्ता में बड़े-छोटे का भेद मानवता को कलंकित करता है। कम्प्यूटर, इंटरनेट, के आने के बाद दुनियाभर में परिवर्तन के नये स्वर मुखर हो रहे हैं। बड़े उद्योग के लिए भारी खर्च करने से बेहतर है कि लोगों द्वारा उत्पादित सामान को सम्मान दें,दें उच्च शिक्षा का उनके लिए कोई मतलब नहीं है। जो लाखों रुपये खर्च करके भी सरकारी नौकरी और महीने में पक्का वेतन पाने की व्यवस्था में शामिल नहीं हो पाते वे कुछ भी नहीं कर पाते हैं। आखिर उन्हें भी रोजगार लोकविद्या में ही मिलता है। हर क्षेत्र में मशीनों के अआवा भी कार्य हो रहे हैं। 60 प्रतिशत लोग गृह निर्माण, सड़क,ईट, प्लास्टिक, बुनाई, रिक्शा, इंजन मिस्त्री, पशु-पालन, खेती इत्यादि के कार्य में लगे हैं, जिसकी देश को जरूरत भी है। इसका मतलब यह कतई नहीं निकालना चाहिए कि ऐसा करना उनकी नियति या मजबूरी है। यदि शोषण की विद्या ही विज्ञान का रूप है तो विश्वविद्यालयीय में विज्ञान में लोकहित का दर्शन नहीं हो सकता। 70-80 प्रतिशत लोग सस्ते दर पर रात-दिन खट रहे हैं जिनकी भारत निर्माण में बहुत बड़ी हिस्सेदारी है। आदमी कोई भी अकुशल नहीं होता है। इसलिए परिवार चलाने के लिए परिवार के एक वयस्क को पक्की नौकरी हो। जिसे जो आता है, उसी काम का पक्का वेतन हो।

सबको नौकरी मिले

चित्रा सहस्त्रबुद्धे ने कहा कि लोकविद्याधर समाज की एकता के लिए उसके लायक और प्रासंगिक राजनैतिक मुद्दे खड़े होना जरूरी है। लोकविद्या जीवनयापन अधिकार के मौलिक संवैधानिक दर्जे का सवाल एक ऐसा ही सवाल है। सबको नौकरी मिले यह भी उसी दर्जे का सवाल है। अपनी अर्थनीति अथवा रोजगार के बारे में सीधे बात करते हुए आजादी के आंदोलन के समय से ही ऐसी बात होती रही है। गांधी जी की कुटीर उद्योगों की नीति, अथवा जयप्रकाश नारायण का बेरोजगारी दूर करने का आवाहन जैसे राजनीतिक-आर्थिक विचारों की ही कड़ी में आज सबको नौकरी की बात देखी जानी चाहिए। जब बेरोजगारी की बात होती है तब सामान्यतौर पर ध्यान शिक्षित नौजवानों की ओर जाता है। यह वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक बनावट के चलते होता है। लोकविद्या जन आंदोलन इसे चुनौती देता है और कहता है कि किसान जो खेतों में काम करता है, कारीगर जो तरह-तरह की छोटी-बड़ी मशीनों पर अपने हुनर से काम करता है, आदिवासी जो अपनी विद्या के बल पर जंगलों में रहता है और महिलायें जो घरों में अपना काम करती हैं, इन सबके ज्ञान को विश्वविद्यालयीय ज्ञान के बराबर का समझा जाय और जो काम वे करते हैं उसी के लिए उन्हें रोजगार दिया जाय, उनकी आय की पक्की व्यवस्था की जाय।

वर्तमान व्यवस्था में बाजार के मार्फत लोकविद्याधर समाज का शोषण होता है। इसलिए हमें रोजगार की वह व्यवस्था नही चाहिए जिसमें सब तरह की सहूलियतें देकर बाजार में लुटने के लिए छोड़ दिया जाय। किसान आंदोलन ने बाजार में मूल्य हासिल करने की बड़ी-बड़ी लड़ाइयां लड़ी हैं, आंशिक सफलतायें भी मिली हैं लेकिन यह साबित हो गया है कि लोकविद्याधर समाज के लोगों को बाजार में मूल्य न मिलना इस व्यवस्था का सबसे मजबूत पाया है। इसीलिए लोकविद्या जन आंदोलन यह मांग करना चाहता है कि हमारे हर परिवार में एक पक्की नौकरी होनी चाहिए। इसी से खुशहाली का रास्ता खुलेगा और इसी से लोकविद्या किसी भी और ज्ञान से अपनी बराबरी का दावा पेश करेगी। इसमें लोकविद्याधर समाज की एकता का सूत्र है।

वाराणसी में हम लोगों ने लोकविद्या नौजवान सभा बनाने की एक प्रक्रिया शुरू की है जिसकी एक मूल मान्यता यह है कि विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले छात्र और जो कभी कालेज नही गये हैं ऐसे नौजवानों के बीच रोजगार की दृष्टि से कोई अंतर नही किया जाना चाहिए। सभी बराबर की पक्की नौकरी के अधिकारी हैं। इससे उस पूरी शिक्षा व्यवस्था को भी एक चुनौती खड़ी होती है जो प्रकृति के संहारक और मनुष्य के शोषण के ज्ञान पर आधारित है। वास्तव में इसमें पूँजी और विश्वविद्यालयीय ज्ञान पर आधारित उस पूरी व्यवस्था को चुनौती है जिसने लोकविद्या और लोकविद्याधर समाज को सतत् नीचा दिखाया है और नीचे ढकेला है। जिसे जो आता है उसके बल पर पक्की नौकरी की बात लोकविद्याधर समाज के तमाम संघर्षों में शामिल की जानी चाहिए। यहां लोकविद्याधर समाज के संघर्षों के नेता आये हुए हैं। यदि यह मांग किसानों, आदिवासियों, कारीगरों और छोटे-छोटे दुकानदारों के संघर्षों में शामिल की जाती है तो इसकी गूँज बहुत दूर तक जायेगी। दूर-दूर के गाँवों तक संदेश जायेगा और वहाँ के नौजवानों के मन में एक उम्मीद जगेगी कि आने वाले दिनों में हमें जो आता है उसके बल पर काम मिल सकता है और हम भी अपना भविष्य बना सकते हैं, अपने परिवार का ढंग से पालन-पोषण कर सकते हैं।

नई चेतना की ओर

जे. के. सुरेश बंगलुरु में रहते हैं, इन्फोसिस के ज्ञान प्रबंधन विभाग के अध्यक्ष हैं और लोकविद्या समूह के शुरू से अंग हैं। विद्या आश्रम बनाने में इनकी बड़ी भूमिका रही। ये पहले दिन के पहले सत्र के सह अध्यक्ष थे। इन्होंने अपने अध्यक्षीय संबोधन में कहा कि यहाँ उपस्थित लोकविद्याधर समाज के प्रतिनिधियों की बातचीत से साफ होता है कि वे काफी आगे की सोच रहे हैं। लोकविद्याधर समाज में एक नई चेतना का प्रवाह है। उन्हें अपनी विद्या पर गर्व है ऐसा सामने आ रहा है। इन बहसों से जाहिर हो रहा है कि वे गुलामी की प्रकृति को समझ रहे हैं। यह साफ है कि यह गुलामी व्यक्तिगत न होकर समाज के स्तर की है और उससे मुक्ति के रास्ते व्यक्तिगत न होकर सामाजिक होने चाहिये।

इस प्रक्रिया में किसान, बुनकर और अन्य तरह के कारीगर व सभी लोकविद्याधर समाजों को एक साथ आना होगा। इसी एकता में नये रास्ते हैं और चुनौतियों का सामना करने की ताकत। गहरे से गहरे सवालों से लेकर साधारण जीवन के रोजमर्रे के सवालों तक चिंतन और व्यावहारिक हल सभी का इसमें समावेश है। लोकविद्या जन आंदोलन इसी प्रक्रिया को आकार देने का प्रयास है। यहां एक बड़ी आशा बन रही है, लोकविद्याधर समाज गुलामी से मुक्त हो सकेगा, एक नई दुनिया बनायेगा, इस विषय पर एक नई आश्वस्ति है।

•

अधिवेशन का एक दृश्य

छोटी दुकानदारी का भविष्य

खुदरा दुकानदारी में विदेशी पूँजी निवेश का रास्ता बनाकर सरकार अब छोटी दुकानदारी खत्म कर देना चाहती है। उदारीकरण की नीति के अन्तर्गत छोटे उद्योगों को पीटने के बाद अब दुकानदारी करने वालों की बारी है। उद्योगों की बहस पुरानी रही। गांधी जी के समय से छोटे उद्योगों की पक्षधरता को लेकर राजनीतिक और सामाजिक संगठन सक्रिय रहे लेकिन छोटी दुकानदारी का सवाल किसी बड़े राजनीतिक सवाल के रूप में केवल अब उभर रहा है। सवाल तो यह तमाम शहरों में चल रहे 'उजाड़ अभियानों' से ही खड़ा हो गया था लेकिन विदेशी कम्पनियों को इसमें सीधे प्रवेश का प्रस्ताव आने से खड़ी सियासी जंग ने इसे राष्ट्रीय स्तर पर उठा दिया है। चूँकि यह सवाल इतने बड़े पैमाने पर पहले नहीं खड़ा हुआ था इसलिये इससे जुड़े सैद्धांतिक प्रश्न अभी तक नहीं उठे थे। हम ये सवाल यहाँ उठायेंगे।

केंद्रीय प्रश्न यह है कि छोटी-छोटी दुकानदारी की समाज में भूमिका क्या है? आज क्या है और किसी बराबरी के न्याय संगत समाज की पुनर्रचना में क्या हो सकती है? छोटी दुकानदारी से स्थानीय बाजार बनते हैं, ग्रामीण बाजार बनते हैं। ठेला-गुमटी वाले, खोमचे वाले, दूर-दराज के इलाकों में हर मोड़ पर एक छोटी सी दुकान लगाने वाले, ग्रामीण बाजारों में छोटी-छोटी रोजमर्रे के सामानों की दुकान लगाने वाले, बस्तियों में अपने घर के सामने चबूतरे पर कुछ सामान बेचने वाले,फेरी वाले ये सब वे छोटे दुकानदार हैं जिनकी आय एक मजदूर, कारीगर या छोटे किसान की आय जैसी होती है। ये सब समाज की एक बहुत बड़ी जरूरत पूरा करते हैं, अपने इर्द-गिर्द के समाज के लिये एक सुविधा होते हैं। इनके धंधों में एक तरह से रोज पैसा लगाया जाता है और रोज कमाई होती है। जितना समय इनका इस काम में लगता है उतने ही समय की मजदूरी से इनकी आय कोई खास ज्यादा नहीं होती। ये लोग एकतरह से अपने लिये रोजगार का अवसर पैदा करके उसमें काम कर रहे होते हैं। ये बेहद छोटी पूँजी के मैनेजर हैं। छोट जोखिम उठाना जानते हैं, बाजार की थोड़ी पहचान रखते हैं। अलग-अलग लोगों से इन्हें बात करना आता है, अपना सामान सजाना और उसे बेचना आता है। ये लोकविद्याधर समाज के महत्वपूर्ण अंग हैं और लोकविद्या के आधर पर बनाये जाने वाले किसी भी समाज का एक महत्वपूर्ण अंग बनेंगे। शहरों के सुंदरीकरण से या सरकार की खुदरा नीति से होने वाला इनका विस्थापन वैसा ही है जैसा किसान का जमीन से, कारीगर का अपने उद्योग से और आदिवासी का उसके जंगल और गांव से है।

छोटी दुकानदारी को व्यापार से अलग देखना जरूरी है। जिसतरह अपना हथकरघा रखने वाले कारीगर और 1000 करघों के मिल मालिक के बीच कोई समानता नहीं होती उसी तरह इस छोटे दुकानदार और व्यापारी के बीच कोई समानता नहीं है। केवल पैसे का अंतर नहीं है, जीवन अलग है, जीवन मूल्य अलग है, कार्य अलग है, दक्षतायें अलग हैं, समाज अलग हैं, सामाजिक चेतना अलग है। देश के आर्थिक संगठन में दोनों की भूमिकायें एकदम अलग-अलग हैं। छोटा दुकानदार अपनी विद्या के बल पर कमाता है और व्यापारी पैसे से पैसा बनाता है। व्यापार का आधार इसमें है कि उत्पादन और उपयोग के स्थानों के बीच बड़ी दूरी होती है। यह दूरी जितनी ज्यादा होती है उतने ही बड़े व्यापारी होते हैं और उतना ही ज्यादा मुनाफा कमाते भी है। जैसे ही ये दूरी घटती चली जाती है व्यापार की भूमिका घटती चली जाती है लेकिन छोटी दुकानदारी का महत्व बना रहता है। छोटी दुकानदारी और व्यापार के बीच फर्क समझे बगैर छोटे दुकानदार की सामाजिक भूमिका को समझना संभव नही है।

सार्वजनिक बहसों में बिचौलियों के खिलाफ तर्क बराबर सुनने को मिलते हैं। यह आम बात है कि किसान को जो दाम मिलता है और उपभोक्ता बाजार में उसी वस्तु की जितनी कीमत चुकाता है उसमें बड़ा अंतर होता है। कारीगर को भी यह बात लागू होती है। उनकी मदद के लिये सरकारें किसान बाजार और क्राफ्ट बाजार भी लगाती रही हैं जिससे बिचौलिये दूर हो जायें और उत्पादन करने वाले खुद अपना सामान बेच सकें। यह एक झूठा सपना है और बहुत बड़ा धोखा है। उत्पादन करने वाला क्यों अपना सामान बेचे? उसे उत्पादन का ज्ञान है वह उत्पादन करेगा। जिसे बेचने का ज्ञान व हुनर होगा वह बेचेगा। उत्पादन कर्त्ता की मदद करने का एक ही तरीका है कि सरकार उसके सामान के खरीद की वे व्यवस्थायें बनाये जो उसे वाजिब दाम दें। केवल उत्पादन से अर्थव्यवस्था नहीं बनती। उत्पादन और वितरण मिलकर अर्थव्यवस्था बनती है। ये दोनों अलग-अलग काम हैं और अलग-अलग क्षमताओं के लोग ये काम करते हैं। वितरण की व्यवस्थायें अगर ठीक से बनाई जायें तो वे समाज को जोड़ने का काम करेंगी। कोई भी वस्तु जितने हाथों को छूए उतने लोगों को जोड़े न कि उनमें आपसी प्रतिस्पर्धा और एक-दूसरे पर संदेह की स्थिति पैदा करे। जाहिर है छोटे दुकानदार की इन सबमें अहम् भूमिका है।

सरकार की खुदरा नीति का विरोध करने वालों का सामान्य तर्क यह है कि इसमें छोटी दुकानदारी करने वालों की तबाही का पैगाम है। शहरों में होने वाले उजाड़ अभियान हम देख चुके हैं। कितने बड़े पैमाने पर परिवार तबाह होते हैं यह आंखों के सामने से गुजरता है। खुदरा धंधे में बड़ी पूँजी के निवेश से बीच के दुकानदारों पर तुरंत विपरीत प्रभाव पड़ेगा जिसके चलते सारे व्यापारिक संगठन इसका विरोध कर रहे हैं। लेकिन हम जानते हैं कि अपने ऊपर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों को ये व्यवस्थित ढंग से नीचे की ओर स्थानांतरित करेंगे और अंत में छोटे दुकानदारों को ही सब कुछ भुगतना पड़ेगा। खुदरा धंधे में विदेशी निवेश के विरोध के संघर्ष और शहरों में हो रहे-ठेलों-गुमटियों के उजाड़ के विरोध के संघर्ष आपस में एका बनायें यह समय की मांग है। छोटी दुकानदारी की समाज में भूमिका और लोकविद्या आधारित समाज बनाने में उनकी भूमिका की पहचान से ही वह राजनैतिक कल्पना संभव है जो इस एका और इस लड़ाई को आकार दे सके।

सबको नौकरी मिले

गरीबी उन्मूलन का और पूरे समाज की खुशहाली की ओर कदम बढ़ाने का एक ही रास्ता है,वह यह है कि हर परिवार में कम से कम एक पक्की नौकरी हो। हर माह एक तनख्वाह मिले जो सरकारी नौकरी की तनख्वाह के बराबर हो। लोकविद्या दृष्टिकोण ने इस विचार को जन्म दिया है और नवम्बर 2011में वाराणसी में हुए लोकविद्या जन आंदोलन के पहले अधिवेशन ने इसे लोकविद्याधर समाज की एक अति महत्वपूर्ण मांग का दर्जा दिया। चूंकि सभी लोग कोई न कोई काम जानते हैं,उन्हें जो काम आता हैं वहीं काम करने की नौकरी उन्हें मिले या जो काम वे करना चाहते हैं वह काम करने की नौकरी उन्हें मिले यह किसी भी जिम्मेदार सरकार का कर्तव्य बनता है। इन नौकरियों में वेतन और काम की शर्तें वैसी ही होनी चाहिये जैसी सरकारी नौकरियों में होती हैं। देश भर के ज्ञान और श्रम को यदि इस दर पर मूल्य मिले तो देश के विकास की दर अभूतपूर्व उॅचाइयां छूएगी। श्रम और ज्ञान से ही पूँजी बनती है और पूर्ण रोजगार का यह रास्ता देखते -देखते देश को यूरोप और अमेरिका के आगे ले जायेगा।

इस मांग का आधारभूत विचार वैसा ही है जैसा कम्युनिस्ट आन्दोलन का 'जमीन जोतने वाले की हो' रहा है और गांधी के आंदोलन का ग्रामोद्योग पर आधारित अर्थ व्यवस्था में रहा है। यह विचार ऐसी अर्थव्यवस्था के निर्माण का विचार है जो लोकविद्या पर आधारित आर्थिक गतिविधियों को समुचित आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करे। जिस काल में आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा के जैसे विचार रहे हैं उसी के अनुरूप मांग आकार लेती रही है। आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा के अलावा यह उस परिस्थिति के निर्माण की मांग है जिसमें लोग अपने ज्ञान के बल पर पहल लेकर काम करने में रुचि लेते हैं। आज सुरक्षा नौकरी के साथ जुड़ी हुई है। चारों ओर नौकरी की मांग है। उन सरकारी नौकरियों के लिये नौजवानों के समुद्र उमड़ पड़ते हैं जिनमें हर हजार अर्जियों पर शायद एक से ज्यादा नौकरी न बनती हो। इतने नौजवान अर्जी भरते हैं और इम्तहान देने पहुँचते हैं कि डाक और रेल की सारी व्यवस्थायें ध्वस्त हो जाती हैं। सारी आरक्षण की कवायद और लड़ाई इन्हीं नौकरियों के लिये हैं। आरक्षण विरोध का संघर्ष भी इन्हीं नौकरियों के लिये है। इंजीनियरिंग कालेजों, पोलिटेक्निक और मैनेजमेंट की पढ़ाई की दौड़ इन्हीं नौकरियों के लिये है।उच्च शिक्षा की दौड़ बड़ी नौकरियों के लिये है। इससे ज्यादा कष्ट की बात क्या हो सकती है कि करोड़ों नौजवानों की नौकरी की इस इच्छा का फायदा बड़ा-बड़ा धंधा करने वाले उठा रहे हैं। इसमें से अगर कोई देशहित और लोकहित का रास्ता निकलना है तो वह यह है कि इस युवा भावना का शोषण न करके सभी के लिये नौकरी की व्यवस्था हो।

यह लोकविद्याधर समाज की सबसे बड़ी मांग है। गाँव-गाँव में कस्बों और नगरों की बस्तियों में रोजगार दफ्तर खुलने चाहिये। जहाँ नौकरी चाहने वाले आकर अपना नाम दर्ज करेंगे और यह दर्ज करेंगे कि उन्हें क्या काम करना आता है। यह मौका सभी को मिलना चाहिये। उनके घर में खेती होती हो, छोटा-मोटा उद्योग या दुकानदारी हो इससे कोई लेना-देना नहीं होना चाहिये। किसान को नौकरी देने का मतलब है कि पूरी क्षमता से किसानी करेगा और उसे सरकार सरकारी वेतन देगी।

आज यह वेतन रु. 12,000/- प्रति माह के आसपास है। यानि सरकार रु. 12,000/- प्रति माह उन लोगों को दे रही है जिनसे कोई भी ज्ञान, हुनर या दक्षता का काम अपेक्षित नहीं है। फिर हुनरमंद और ज्ञानी लोगों को यह मामूली वेतन देने में क्या बाधा हो सकती है? इससे एक और बड़ी राष्ट्रीय समस्या का हल होगा- सब बच्चे स्कूल पढ़ने जाने लगेंगे। आप खोज करके देख लें-सरकारी नौकरी करने वालों या कोई भी पक्की नौकरी करने वालों के सब बच्चे पढ़ने जाते हैं। जब सबको आज के हिसाब में कम से कम 12000/- रूपये महीना मिलने लगेगा तो सबके बच्चे पढ़ने जायेंगे। न सर्व शिक्षा अभियान की जरूरत होगी, न वर्दी-साइकिल, किताबें, मध्यान्ह भोजन बाँटने की और न शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय एन.जी.ओ. ही प्रासंगिक रह जायेंगे।

जब हम ये बात लेकर किसान संगठनों,कारीगरों या दूर-दराज के गांवों में जाते हैं तो कोई बहस नहीं होती है, तुरंत सहमति का माहौल बनता है। किंतु जब शहरों में पढ़े-लिखे लोगों के बीच बात होती है तो बड़ी बहस होती है। तरह-तरह के संदेहों के बीच, योग्यता और काम करने या न करने की प्रवृत्ति के प्रश्नों के बीच जो प्रमुख सवाल उठता है वह यह कि यह कैसे हो पायेगा? उन्हें सारी व्यवस्था तितर-बितर होती नजर आती है। लगता है कि हम ऐसे समाज के बारे में सोचना ही भूल गये हैं, जिसमें न गरीब होंगे न मजबूर। सबको नौकरी और खुशहाली की ओर बढ़ने का यह रास्ता राज्य व्यवस्था की पुनर्रचना की मांग करेगा, राज्य के वित्तीय प्रबंधन के जबर्दस्त विकेन्द्रीकरण की मांग करेगा। अगर हम आज की वास्तविकताओं, 21वीं सदी के समाज की वास्तविकताओं का संदर्भ लें तो यह रास्ता गांधी और मार्क्स दोनों की कसौटियों पर खरा उतरेगा।

•

अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान आन्दोलन

13 नवम्बर की दोपहर अंतर्राष्ट्रीय सत्र के लिए समर्पित थी। विदेशी भागीदार के रूप में हमारे साथ लीना दोजुकोविच रहीं, जो क्रोशिया की हैं, वियना विश्वविद्यालय में वरिष्ठ शोध छात्रा हैं। यूरोपीय विश्वविद्यालयों में चल रहे ज्ञान मुक्ति आंदोलन में सक्रिय भागीदारी रखती हैं। दूसरे वक्ता दिल्ली के जयसेन थे। जयसेन विश्व सामाजिक मंच (डब्लू.एस.एफ.) के सक्रिय सदस्य हैं। सैद्धांतिक चर्चाओं और विश्व भर में चल रहे आंदोलनों के साथ इंटरनेट पर जुड़े रहते हैं और वार्ताएं चलाते रहते हैं। तीसरे वक्ता पुणे के के.के. सुरेन्द्रन थे। वे भौतिक शास्त्र के विशेषज्ञ एवं दार्शनिक हैं तथा लोकविद्या विचार व विद्या आश्रम के मूल निर्माता समूह के सदस्य हैं। एक और वक्ता पार्थ सारथि राय थे जो पश्चिम बंगाल में बायोलाजी के प्रोफेसर हैं और बुनियादी परिवर्तन के संघर्षो के साथ जुड़े हैं। सत्र की अध्यक्षता प्रोफेसर मोहिनी मलिक ने की जो दर्शन के क्षेत्र से हैं और आई.आई.टी. कानपुर में दर्शन में शोध और शिक्षण करती रही हैं। सत्र का संचालन अविनाश झा ने किया। अविनाश एक दार्शनिक हैं और विद्या आश्रम व लोकविद्या विचार के मूल निर्माता समूह के अंग हैं। वे दिल्ली के एक उच्च शोध संस्थान, सी.एस.डी.एस. में पुस्तकालय अध्यक्ष हैं।

लोकविद्या जन आंदोलन में अंतर्राष्ट्रीय पक्ष को महत्वपूर्ण माना गया है। दुनिया भर के शासित, उत्पीड़ित, शोषित और तिरस्कृत समाजों में अगर कुछ समान है तो वह लोकविद्या ही है। आधुनिक ज्ञान की सत्ता और विश्वविद्यालय का प्रसार विश्वव्यापी है और यह समझना जरूरी है कि विश्वव्यापी स्तर पर इसे चुनौती का एक सिलसिला कायम करने की क्षमता केवल लोकविद्या में ही है। दुनिया भर में आधुनिक पश्चिमी ज्ञान की सीमायें तोड़कर अथवा लांघकर जो आंदोलन चल रहे हैं उनमें एक आपसी बिरादराना बनने की जरूरत है।ये दक्षिणी अमेरिका के 'धरती माँ' और 'प्रकृति के अधिकार' के आंदोलन हैं, दुनिया भर के किसानों के 'खाद्य सम्प्रभुता' के आंदोलन हैं, यूरोप और अमेरिका के 'ज्ञान मुक्ति' और 'जीवंत ज्ञान' के छात्र आंदोलन हैं और अफ्रीका और एशिया के समाज के लोकविद्याधर विस्थापन विरोधी आंदोलन हैं। इन आंदोलनों के आपसी बिरादराने की ओर बढ़ने के रास्ते खोजना यह इस अंतर्राष्ट्रीय सत्र का उद्देश्य रहा।

•

ज्ञान की दुनिया में हलचल और लोकविद्या की प्रासंगिकता

अविनाश झा ने सत्र की शुरूआत करते हुये विद्या आश्रम की अंतर्राष्ट्रीय उपस्थिति से परिचय कराया। उन्होंने कहा कि कुछ वर्ष पहले यूरोप से ज्ञान के क्षेत्र में एक नये किस्म की वार्ता की पहल ली गई। यह Edu-Factory (एडू-फैक्टरी-शिक्षा का कारखाना) के नाम से इंटरनेट पर चलाई गयी एक राजनैतिक बहस थी। ज्ञान उत्पादन के क्षेत्र में चल रही लड़ाईयाँ, अंतर्विरोध और बदलाव तथा उनसे जुड़ी गहरे सामाजिक परिवर्तन की संभावना, ये इस वार्ता के विषय रहे। एक स्वायत्त वैश्विक विश्वविद्यालय की कल्पना पर यह वार्ता केन्द्रित हुई। एक ऐसा ज्ञान व शिक्षण का स्थान जो राजनैतिक और आर्थिक दबावों से मुक्त हो। इसमें भाग लेने के लिये विद्या आश्रम को आमंत्रित किया गया था। इस बहस की एक किताब भी छपी जिसमें विद्या आश्रम के सदस्यों के लेख हैं। इससे हमने ये पाया कि ज्ञान के क्षेत्र में बुनियादी संघर्ष विश्वव्यापी हैं और लोकविद्या विचार का उनके साथ एक सकारात्मक सम्बंध बनता है। इस चर्चा को लोकविद्या जन आंदोलन का हिस्सा बनाने की दृष्टि से यह सत्र आयोजित है। अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों की जानकारी रखने वाले और उनमें भाग लेने वाले वक्ता आपके सामने अपने विचार प्रस्तुत करेंगे।

अफ्रीका और अमेरिकी महाद्वीपों के ज्ञान आंदोलन

जयसेन ने कहा कि ज्ञान अपने सांस्कृतिक संदर्भों में बनता है इसलिये अलग-अलग संस्कृतियों में ज्ञान की समझ क्या है यह समझने की कोशिश हमें करनी चाहिए। हम आपके सामने इस संदर्भ में दुनिया में अलग-अलग जगहों पर चलने वाले आंदोलनों की कुछ बात करेंगे। ऐसे आंदोलनों की बात करेंगे जो लोकविद्या जन आंदोलन की दृष्टि से महत्व रख सकते हैं। पहला जिक्र मैं मेक्सिको में चल रहे एक बहुत बड़े आंदोलन का करना चाहता हूँ। दक्षिणी मेक्सिको के आदिवासियों ने जिन्हें जियापास कहते हैं, 1 जनवरी 1994 को जिस दिन विश्वव्यापार संगठन बना था, अपनी आजादी का ऐलान कर दिया। उन्होंने कहा कि वे इस विश्व व्यवस्था का हिस्सा नही बनेंगे। यह आंदोलन एक बहुत ही हिंसक आंदोलन के रूप में शुरू हुआ लेकिन आज शांतिपूर्ण अहिंसक आंदोलन बन चुका है। वे शहरों के विभिन्न वर्गों, मजदूरों, छात्रों, शिक्षकों, महिलाओं आदि के संगठनों से यह सोचने का आग्रह करते हैं कि वे एक शांतिपूर्ण समाज की अपनी कल्पना खुद तैयार करें और अपनी क्रांति का इजाद करें। सबका आधार अपने-अपने ज्ञान में होता है तथा संघर्षो के दौरान सीखना व आदेश मानने के साथ-साथ दिशा देना जैसी बातें उनकी मूल मान्यतायें हैं।

दुनिया भर में जगह-जगह संघर्ष चल रहे हैं और उन सबका एक चित्र बनाना तो मुश्किल काम है। अब मैं इसके कुछ उदाहरण लूंगा। पहले अफ्रीका में चल रहे आंदोलन ही लें। उसे अरब आंदोलन कहा जा रहा है लेकिन वास्तव में यह अफ्रीकी जागृति है। अफ्रीका के लोग इसे अफ्रीकी जागृति के रूप में ही देख रहे हैं। ऐसे संघर्ष अनेक जगहों पर चल रहे हैं। अपने देश में ही लें तो दलितों और आदिवासियों के संघर्ष हैं, पिछड़ी जातियों के संघर्ष हैं। इनकी बातें यहां हो रही हैं। इनके अलावा उत्तरपूर्व में बड़े-बड़े संघर्ष चल रहे हैं। आस-पास के देशों में बड़ी उथल पुथल है- बंगला देश, श्रीलंका, पाकिस्तान सभी जगह तेज संघर्ष हैं। पूरा दक्षिण एशिया ही उथल-पुथल से ग्रस्त है। बहुत से ऐसे संघर्ष हैं जिनके बारे में हम जानते भी नहीं। इनके अलावा अब जो नया चरण शुरू हुआ है वह यूरोप और अमेरिका के मध्य वर्गों द्वारा आंदोलन का है। ये वे वर्ग हैं जिनपर वैश्वीकरण का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। यह उन मध्य वर्गों का आंदोलन है जिन्हें हमेशा पूँजीवाद का समर्थक माना गया लेकिन जो अब इस व्यवस्था में अपनी जगह नहीं बना पा रहे हैं। इस तरह विश्वव्यापी स्तर पर बड़ी तादाद में सभी तबको का पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति असंतोष उभर कर आ रहा है। वे उस सामाजिक ज्ञान की तलाश और पुनर्निर्माण चाहते हैं जिसके बल पर पूँजीवाद की आक्रामक शक्तियों से मुकाबला किया जा सके और आवश्यक नई राजनीति का निर्माण हो सके।

अब बोलिविया का उदाहरण लें। दक्षिण अमेरिका के इस देश में पिछले 10 वर्षो में एक सर्वथा नई राजनीति का उदय हुआ है। सैकड़ों वर्षों से गुलामी में रहे वहाँ के मूल निवासी मजदूरों के संघर्ष देशव्यापी जन संघर्षो में तब्दील हुये हैं और देश के इतिहास में पहली बार मूल निवासियों की सरकार बनी। उनके सारे कार्यो, संगठन और नीतियों में यह साफ झलकता है कि वे अपने ज्ञान के आधार पर काम करना चाहते हैं। उन्होंने इस बात को खुली मान्यता दी कि बोलिविया कई राष्ट्रीय संस्कृतियों और ज्ञान की परम्पराओं का देश है। विश्व के पैमाने पर जलवायु परिवर्तन की जनपक्षीय बहसों को उन्होंने 'धरती माँ के अधिकार' जैसे विचारों से समृद्ध किया है।

मेक्सिको और बोलिविया बड़े उदाहरण हैं लेकिन कई जगह दक्षिण अमेरिका में हो रही उथल-पुथल अपने ज्ञान के बल पर नये रास्तों की खोज दिखा रही है। अर्जेन्टिना, चिली, और ब्राजील के उदाहरण भी लिये जा सकते है। इन सब जगह 'संघर्षों के दौरान चलते-चलते सीखना' लागू होता दिखाई दे रहा है। इन सभी जगहों पर शोषित वर्गो और मध्य वर्गो के बीच नई एकता दिखाई देती है।

अब उत्तरी अमेरिका को लें। यहाँ दसों हजार साल से लोग रह रहे थे, उनकी उच्च संस्कृति थी। लगभग 500 साल पहले इंग्लैण्ड और यूरोप से लोग यहां आये। उन्होंने मूल निवासियों को हथियारबंद तरीके से और छूत के रोग फैलाकर मार डाला। अब वे बेहद कम तादाद में बचे हैं। ये अमेरिका के सबसे शोषित और त्रस्त तबके हैं। फिर अफ्रीका से गुलाम लाये गये और अब मध्य और दक्षिणी अमेरिका के स्पेनी भाषा बोलने वाले मजदूर। ये सब उत्तरी अमेरिका के शोषित वर्ग हैं। पिछले 30 वर्षो में भारत से और अन्य दक्षिणी देशों से बड़ी तादाद में वहाँ लोग गये हैं और इनकी स्थिति आर्थिक दृष्टि से ठीक-ठाक है, हालांकि श्वेत समुदायों के जातिवाद के ये भी शिकार हैं। अब पिछले 10 वर्षो से स्थिति में बड़ा बदलाव आया है। मध्यवर्गीय श्वेत समुदाय नई व्यवस्थाओं में उनके लिये घटती जगह से आंदोलित है जिसका नतीजा 'वॉलस्ट्रीट पर कब्जा' के आंदोलन के रूप में दिखाई दे रहा है। हालांकि इस आंदोलन का नेतृत्व श्वेत समुदायों के हाथ में हैं, इसमें सभी का समर्थन है और सभी एक दूसरे के इतिहास और ज्ञान परम्पराओं से सीखने की प्रक्रिया में हैं। विभिन्न समुदाय आपस में शांतिपूर्ण तरीके से एकसाथ कैसे रह सकते हैं इसकी खोज है। उनके लिये लोकविद्या आंदोलन से और लोकविद्या आंदोलन को उनके तौर तरीको से एक नई राजनीति के निर्माण के दृष्टिकोण सीखने के लिये बहुत कुछ है।

इस तरह विश्व भर में चल रहे आंदोलनों की जो स्थिति है और जो तौर तरीके हैं, उनसे लोकविद्या जन आंदोलन जुड़ सके और पारस्परिक लाभ हो इसकी अच्छी संभावनायें हैं। वे भी लोकविद्या आंदोलन से सीख सकते हैं और इन जुड़ाओं से लाभप्रद आपसी लेन देन हो सकता है।

बोलिविया : लोकविद्या के इस्तेमाल के अधिकार के संघर्ष

पार्थ सारथि राय ने दक्षिण अमेरिका के आंदोलनों की एक समझ प्रस्तुत की। उन्होंने कहा कि वे बोलिविया और बेनीजुएला में एक साल के लिये रह चुके हैं और वहाँ के किसानों के साथ नजदीकी से जुड़े रहे हैं। वहाँ के किसान, जो नये तरीके से काम करने की कोशिश कर रहे हैं उसका लोकविद्या से बड़ा नजदीक का संबंध है। दक्षिणी अमेरिका की पारम्परिक संस्कृति भारत जैसी ही उन्नत रही है। स्पेन और पुर्तगाल के लोगों ने वहाँ के समाज को ध्वस्त किया। उसके पहले हजारों साल से और उसके बाद भी वे अपने ज्ञान के आधार पर अपनी जिन्दगी संगठित करते रहे। पिछले 10 वर्षों में वहाँ के मूल निवासियों ने यूरोप से आये ज्ञान के खिलाफ एक चुनौती खड़ी की है। इसका कारण यह है कि वैश्वीकरण की नीतियों को सबसे पहले वहीं लागू किया गया। 1970 के दशक से ही वहाँ वे नीतियाँ लागू हुई जो अपने देश में निजीकरण और उदारीकरण के नाम पर 1990 में लागू की गई। वैश्विक वित्तीय पूँजी के लिये यह इन नीतियों का प्रथम परीक्षण था। नतीजा यह हुआ कि वहाँ के लोगों के पास जो कुछ था वह भी छिन गया और इन नीतियों के खिलाफ अपनी लोकविद्या के आधार पर वे खड़े होने शुरू हुये।

बोलिविया में कोका नाम का एक पौधा होता है, जिसकी पत्ती का वहाँ के लोग स्वास्थ्य रक्षण में इस्तेमाल करते हैं। पहाड़ियों पर रहने वाले लोग उसकी पत्ती चबाते हुये श्रम के काम करते हैं, इससे उनकी साँस नही फूलती। वह पौधा उनकी रसोई का हिस्सा है, उनकी संस्कृति का हिस्सा है। इस पर उनकी कवितायें मिलती हैं, साहित्य मिलता है। यह सब उनकी लोकविद्या का अभिन्न अंग है। यूरोप के लोगों ने देखा कि इस पौधे से नशीला पदार्थ बनाया जा सकता है जिसे कोकीन कहते है। नतीजा यह हुआ कि कोकीन में खूब अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ा। और चूँकि उत्तर अमेरिका की सरकार व्यापारियों को रोकने में असमर्थ थी उसने बोलिविया में कोका के उत्पादन पर पाबंदी लगाने की कोशिश की। कोका के किसान बेहद आक्रोशित हुये और उनके यूनियन का आंदोलन बढ़ता ही चला गया। लोकविद्या के इस्तेमाल के अधिकार का यह आंदोलन इतना बड़ा हो गया कि अंत में इस आंदोलन के नेता इवो मोरालिस बोलिविया के राष्ट्रपति निर्वाचित हुये।

इसके अलावा एक दूसरा उदाहरण है, जो बोलिविया के एक शहर, कोचाबाम्बा में एक नदी को ब्रेकटेल नाम की एक अंतर्राष्ट्रीय कम्पनी को बेचने का किस्सा है। इस संदर्भ में हुये संघर्षों में भी लोगों द्वारा नदी के लोकविद्या आधारित विविध इस्तेमाल की बात सामने आती है।

यूरोप का छात्र आंदोलन

लीना दोजुकोविच ने कहा कि भारत की परिस्थितियों से जोड़कर अपनी बात कहना उनके लिये चुनौती भरा कार्य है, बहरहाल वे कोशिश करेंगी। यूरोप में सब जगह शिक्षा का क्षेत्र एक जैसा हो इसके लिये यूरोपीय यूनियन के देशों की सरकारों और उनके शिक्षा मंत्रालयों ने एक बड़ी पहल ली है यूरोप के विश्वविद्यालयों को किलों में तब्दील किया जा रहा है। जो लोग हाशिये पर हैं या बाहर के देशों से आते हैं उनके लिये उनमें प्रवेश मुश्किल होता जा रहा है। शिक्षा को वस्तु अथवा सेवा के रूप में देखना शुरू हो गया है। मध्य यूरोप के देशों में ये बदलाव बहुत तेजी से आये। उस समय लीना वहीं पर थीं। इतने अचानक बदलाव आये कि उनका विरोध लाजमी था। एक छात्र आंदोलन ने आकार लेना शुरू कर दिया। इस आंदोलन का तरीका यह रहा कि छात्र विश्वविद्यालय के किसी बड़े हॉल या इमारत पर कब्जा जमा कर वहाँ बैठ जाते थे। इससे सब कार्य रुक जाते थे। जो लोग इमारत के अंदर होते थे वे वही फँस जाते थे। वियना विश्वविद्यालय से शुरू हुआ यह आंदोलन 1-2 दिन में ही पूरे आस्ट्रिया में फैल गया। इसका प्रभाव विश्वविद्यालय के बाहर भी पड़ा। जिन लोगों के पास रहने के स्थान नही हैं उन्होंने भी कुछ स्थानों पर कब्जा कर लिया। श्रमिक संगठनों ने भी समर्थन किया। बड़ी तेजी से एक आंदोलन बनता चला गया।

सरकारों ने आर्थिक संकट का हवाला देते हुये फीस बढ़ा दी थी और विश्वविद्यालय को मिलने वाले अनुदान में कटौती शुरू कर दी थी। इस पर इस आंदोलन ने यह नारा दिया कि 'हम आपके संकट की कीमत नही चुकायेंगे'। कब्जा किये गये स्थानों पर गतिविधियां तेज हो जाती थीं, कला और संस्कृति के कार्यक्रम चलते थे और पढ़ाई की कक्षायें भी। कई शिक्षक भी इस आंदोलन में शरीक हुये। इसे निजीकरण के विरोध के आंदोलन के रूप में देखा जाने लगा क्योंकि शिक्षा के अलावा और क्षेत्रों में भी, जैसे स्वास्थ्य में निजीकरण और निगमीकरण से लोग दुःखी और त्रस्त थे।

उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि बाहर से आये लोगों और हाशिये पर जीने वाले लोगों की हिस्सेदारी इन प्रतिरोधों में बहुत कम रही है। एक बार जब यूरोपीय यूनियन के देश 'शैक्षणिक सुधारों' की अपनी प्रक्रियाओं की सफलता का एक बड़ा जश्न वियना में मनाने जा रहे थे तब नौजवानों ने उसका बड़ा विरोध किया। एयरपोर्ट से आने वाले रास्ते और शहर में आने वाले सभी रास्तों पर आवा-जाही

रोक दी और मीटिंग स्थल को घेर लिया। इस दौरान जब एक विदेशी लड़की मंच पर बोलने के लिये खड़ी हुई तो आस्ट्रिया के छात्रों ने उसके खिलाफ हल्ला किया और उसे मंच से उतरने को मजबूर कर दिया।

हालांकि इस आंदोलन में और भी अनेक लोग हैं जो राष्ट्रीय सीमाओं को नहीं मान्यता देते। सभी देशों के आंदोलनरत समूहों ने मिलकर फरवरी 2011 में पेरिस में एक बड़ी मीटिंग की। इस मीटिंग में आने से तुनिसिया के छात्र कार्यकर्ताओं को फ्रांस के प्रशासन ने रोक दिया। दूसरी तरफ यूरोपीय आंदोलन के कार्यकर्ता तुनिसिया के लोकतंत्रवादी आंदोलन के समर्थन में वहाँ जा पहुँचे हैं। इसके अलावा अमेरिका में शुरू हुए वालस्ट्रीट पर कब्जा करो आंदोलन के साथ एका में अपने को देखते हैं।

नई प्रौद्योगिकी के संदर्भ

सुरेन्द्रन ने नई प्रौद्योगिकी के चलते समाज की व्यवस्थाओं में आ रहे परिवर्तन की ओर ध्यान खींचा। उन्होंने कहा कि विकसित राज्य अधिक से अधिक खर्च इन प्रौद्योगिकियों पर कर रहे हैं। ये नैनो, बायो और कम्प्यूटर व संचार की प्रौद्योगिकियाँ हैं। इनके मार्फत उत्पादन व सेवाओं की वह व्यवस्था तैयार की जा रही है जिसमें बहुत कम लोगों की जरूरत होगी। ये व्यवस्थायें पुरानी औद्योगिक व्यवस्थाओं से एकदम अलग हैं, जिनमें बहुत बड़ी तादाद में मजदूरों और गुलामों से काम लिया जाता था। अब नये सिरे से दो दुनिया का निर्माण हो रहा है जिसमें वैश्विक वित्तीय पूँजी सिर्फ 10 फीसदी लोगों की दुनिया बनाने के लिये लगाई जायेगी। 90 फीसदी लोग लोकविद्या और उसके आधार पर होने वाले उत्पादन व सेवाओं की दुनिया बनायेंगे। आज जो चारों ओर आंदोलन देखे जा रहे हैं उनका मुकाबला शासक वर्ग नये तरीकों से नई प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से करेंगे, जो मध्यपूर्व की लड़ाइयों में देखा भी जा रहा है। इसलिये नई प्रौद्योगिकी के चलते जो परिवर्तन हो रहे हैं और जिस नई उत्पादन, संगठन और सैन्य व्यवस्था से नये शासक वर्ग लैस हो रहे हैं उसके ऊपर विचार करना बेहद आवश्यक है। शोषित वर्गों को आंदोलित करने वाले और संगठित करने वाले लोगों को अपने वैचारिक पटल पर इन बातों को लाना होगा और उन्हें समझना होगा।

प्रो. मोहिनी मलिक ने अपने अध्यक्षीय सम्बोधन में लोकविद्याधर समाज की अंदरूनी समस्याओं का जिक्र किया। ऊँच-नीच और सामाजिक विभाजन की ओर ध्यान आकर्षित किया और कहा कि लोकविद्या आंदोलन इसे जितनी गंभीरता से ले रहा है उससे कही ज्यादा गंभीरता से लेने की जरूरत है। पूरे बहिष्कृत समाज की एकता में दलितों के स्थान पर सफाई होनी चाहिये।

•

अधिवेशन में घोषित समितियाँ

लोकविद्या जन आंदोलन संयोजन समिति

1.	चित्रा सहस्त्रबुद्धे	वाराणसी
2.	प्रेमलता सिंह	वाराणसी
3.	लक्ष्मण प्रसाद	वाराणसी
4.	दिलीप कुमार	वाराणसी
5.	एहसान अली	वाराणसी
6.	रवि शेखर	लखनऊ
7.	सौम्या	गुड़गांव
8.	पूर्णिमा	दिल्ली
9.	विजय कुमार	मधुबनी
10.	अजय कुमार	वैशाली
11.	दिलीप	देवघर
12.	अवधेश	सिंगरौली
13.	लक्ष्मीचंद दूबे	सिंगरौली
14.	अजय	सिंगरौली
15.	सुभाष	रीवां
16.	संजीव कीर्तने	इंदौर
17.	मगन सिंह बघेल	इंदौर
18.	गिरीश	नागपुर
19.	कृष्णराजुलु	हैदराबाद
20.	मोहनराव	चिराला
21.	वीरनागेश्वर राव	चिराला
22.	अमित बसोले	अमेरिका

लोकविद्या जन आंदोलन सलाहकार समिति

1.	सुरेन्द्रन	पुणे
2.	विजय जावंधिया	वर्धा
3.	सुनील	वाराणसी
4.	रामसुभग शुक्ला	सोनभद्र
5.	राजपाल शर्मा	अलीगढ़
6.	जयसेन	दिल्ली
7.	अविनाश झा	दिल्ली
8.	अभिजीत मित्रा	हैदराबाद
9.	ललित कौल	हैदराबाद
10.	जे.के. सुरेश	बंगलुरू
11.	रवीन्द्र कुमार पाठक	गया

लोकविद्या : कला-भाषा-दर्शन-मीडिया

14 तारीख को मीडिया, कला व दर्शन का सत्र सम्पन्न हुआ। चित्रा जी ने विषय प्रवेश कराया। अध्यक्षता कृष्णराजुलु और स्वाति कीर्तने ने की। रविशेखर ने सत्र का संचालन करते हुये कहा कि हम ये बहस करने जा रहे हैं कि लोकविद्याधर समाज मीडिया का इस्तेमाल लोकहित की राजनीति गढ़ने के लिये कैसे कर सकता है। इस सत्र में अधिवेशन में भाग लेने आये लोगों ने तेलुगु, मराठी, भोजपुरी और हिन्दी में कविता और गीत प्रस्तुत किये।

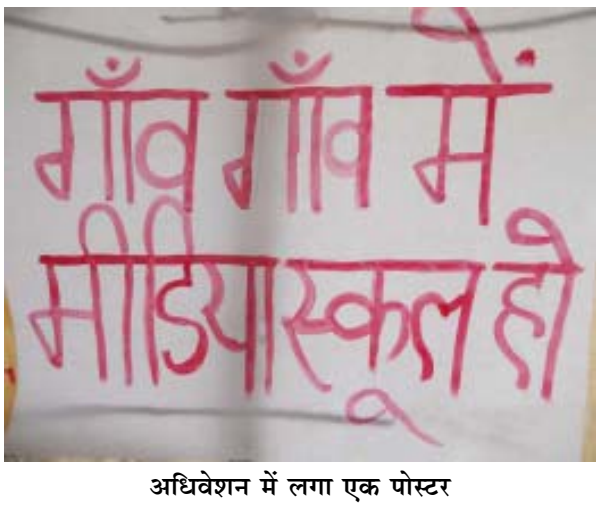

अधिवेशन में लगा एक पोस्टर

सामान्य जीवन से अलग न हो कला और मीडिया

चित्रा सहस्त्रबुद्धे ने सत्र का विषय सभा के सामने रखा। उन्होंने कहा कि लोकविद्या जन आंदोलन एक ज्ञान आंदोलन है। यह पढ़े-लिखे लोग जिस तरह के ज्ञान आंदोलन की बात करते हैं वैसा नहीं है। यह लोकविद्याधर समाज का ज्ञान आंदोलन है। हमारी ज्ञान की अवधारणा आधुनिक ज्ञान में सीमित होगी तो हमें पढ़े-लिखे लोगों की दुनिया के अलावा कुछ नहीं दिखाई देगा। कला,भाषा और मीडिया के क्षेत्र ज्ञान के वे क्षेत्र हैं जो हमें पढ़े-लिखे लोगों की दुनिया के बाहर ज्ञान का, समाज में ज्ञान का, दर्शन कराते हैं। लोकविद्याधर समाज की उत्पादन क्रियाओं में पढ़े-लिखे लोगों को ज्ञान नहीं दिखाई देता। इस ज्ञान को देखने की समझ व क्षमता कैसे विकसित होती है इस सवाल पर विद्या आश्रम में बहुत बहस हुई है।

विश्वविद्यालयीय विद्या से यह समझ विकसित नहीं होती बल्कि दबा दी जाती है। विश्वविद्यालय में ज्ञान की अवधारणा साइंस आधारित है जबकि कला के क्षेत्र में ज्ञान संवेदनाओं पर आधारित है। मनुष्य की मनुष्य के प्रति संवेदना या मनुष्य की सृष्टि के प्रति संवेदना के आधार पर कला का संसार बनता है। यानि कलाकार सृजन के दौरान जिन भावों, संवेदनाओं ,तर्क, मूल्य और दर्शन के रास्तों से गुजरता है वे मौलिक अर्थ में विश्वविद्यालयीय विद्या, साइंस में निहित ज्ञान के रास्तों से भिन्न हैं। यूं कहें कि सृजन सत्य के निर्माण की ही क्रिया है। लोकविद्या किस तरह से एक व्यवस्थित ज्ञान का प्रकार है, उसका अपना एक सिद्धांत है, एक दर्शन है यह तब स्पष्ट होना शुरू होता है जब हम लोक में बिखरी और नित नवीन होती कलाओं और उत्पादन क्रियाओं को देखना शुरू करते हैं। सृजन की हर विधा के पीछे जुड़े भावों, संवेदनाओं, मूल्य के दर्शन होने लगते हैं। किस तरह इन सबके आधार पर मनुष्य जीवन संगठित होता दिखाई देने लगता है, तो फिर यह ज्ञान नहीं तो क्या है? यह तो एक व्यवस्थित ज्ञान का प्रकार है। सृजन की विशेषता यह है कि उसके पीछे मनुष्य की संवेदना कार्य कर रही होती है न कि वस्तुओं के भौतिक रूप, बनावट अथवा उसका संघटन। मनुष्य की संवेदना ही नैतिक मूल्यों का स्रोत है। उन्होंने कहा कि इस तरह सामान्य जीवन, लोकविद्या, कला का संसार और भाषा यह मिलकर ज्ञान की एक कड़ी बनाते हैं और इस कड़ी के चलते वे सभी लोग जो लोकविद्या के बल पर जी रहे हैं ज्ञानी दिखाई देने लगते हैं। केवल ज्ञानी ही नहीं बल्कि दार्शनिक दिखाई देने लगते हैं,जो विचारों को गढ़ते हैं। ऐसे विचार जिनसे नई दुनिया गढ़ी जा सकती है, एक नये मनुष्य का निर्माण हो सकता है, तो यह कैसे ज्ञान नहीं है? विश्वविद्यालय की विद्या हमें दार्शनिक नहीं बना पाती केवल जानकार बना पाती है। इसलिये ज्ञान की कसौटी तो लोकविद्या में है, विश्वविद्यालय में नहीं । दूसरी बात ज्ञान की दुनिया में सामान्य से सामान्य व्यक्ति दखल ले सकता है। हर व्यक्ति ज्ञानी है। इसलिये लोकविद्या के मीडिया की कल्पना में भी लोग क्या कह रहे हैं यह बहस में लाना महत्वपूर्ण है न कि लोकहित के बारे में अपनी बातों को दबाव से लाना।

इंटरनेट में ज्ञान का स्वरूप बदल रहा है

अविनाश झा ने सूचना युग में ज्ञान के दर्शन से संबंधित चर्चा की। उन्होंने कहा कि बदलाव इंटरनेट के इर्द-गिर्द है। पहली बात तो यह कि इंटरनेट के चलते, ई-मेल के चलते लोगों के बीच सम्पर्क और सूचनाओं के आदान-प्रदान, सम्प्रेषण आदि की गति बहुत बढ़ गयी है। कई अर्थों में खर्च भी इसमें बहुत कम होता है। लेकिन प्रमुख बात यह नहीं है। एक दूसरे और गहरे स्तर पर इंटरनेट के चलते एक बदलाव आ रहा है जिससे सभी लोग प्रभावित हैं, वे भी जो इंटरनेट पर काम नहीं करते। हम अपने छोटे-छोटे कामों के जरिये जैसे रेल का टिकट कटाना या बैंक में अकाउंट खोलना, से एक ऐसे सूचनाओं के भण्डार का हिस्सा हो जाते हैं जो इंटरनेट पर जमा होता रहता है, यहाँ से वहाँ स्थानांतरित होता रहता है और खरीदा व बेचा जाता रहता है। इसके साथ एक ज्ञान की भाषा का विकास हुआ है। ज्ञान आधारित समाज, ज्ञान आधारित अर्थ व्यवस्था, ज्ञान उद्योग, जैसी शब्दावलियां अस्तित्व में आई हैं। ज्ञान शब्द के इस प्रयोग का अर्थ ज्यादातर बस कम्प्यूटर के इस्तेमाल से होता है। वास्तव में इंटरनेट के इस्तेमाल से होता है। हमें ये सोचना होगा कि क्या इंटरनेट युग में ज्ञान का एक नया स्वरूप बन रहा है? देखिये, अब लेखन की, चित्र बनाने की या संगीत रचना की प्रक्रियाओं में एक गुणात्मक अंतर आया है। इंटरनेट और कम्प्यूटर के चलते निर्माता ज्ञान और सूचनाओं के एक बहुत बड़े भण्डार-जाल पर बैठा होता है। और उसके आधार पर कांट-छांट, जोड़-तोड़, सम्पादन को बहुत बड़ा विस्तार मिला है। इस गतिविधि को ज्ञान की गतिविधि माना जाता है। वस्तुओं के निर्माण की प्रक्रिया में भी सूचनाओं अथवा ज्ञान के जाल के साथ सम्पर्क में रहकर सतत नवीनीकरण किया जाता है। बाजार में अपनी पहुँच बनाये रखने में इसका बड़ा महत्व होता है। अब वस्तुयें अपने एक ही रूप में बहुत दिनों तक नही दिखाई देतीं। इसका श्रेय इस ज्ञान गतिविधि को ही दिया जाता है। पहले ज्ञान के आधार पर मशीनें बनती थीं और फिर श्रम के बल पर वे चलाई जाती थीं। श्रमिक को जानकार होने की जरूरत नहीं होती थी। अब ऐसा नहीं है। ज्ञान की गतिविधि हर स्तर और हर कदम पर शामिल रहती है। इसका हम लोकविद्या दृष्टि से स्वागत करते हैं। जिसका स्वागत हम नहीं करते हैं वह यह कि ज्ञान को अब फिर से दूसरी तरह से श्रेणीबद्ध किया जा रहा है। संगीत, कला और मीडिया के अलावा भी सभी प्रमुख क्षेत्रों में जैसे बाजार, शिक्षा आदि में कम्प्यूटर-इंटरनेट का इस्तेमाल बहुत बढ़ गया है। इसमें जो एक जरूरत होती है वह यह कि सूचनाओं या ज्ञान को डिजिटल रूप में ढालना पड़ता है यानि उस गणितीय संरचना में ढालना पड़ता है जो कम्प्यूटर के लिये उपयुक्त है। और ऐसी ही सूचनाओं और ज्ञान को महत्वपूर्ण माना जाता है। जिन चीजों का डिजिटल मैनेजमेंट नहीं हो सकता उन्हें नीचा माना जाता है, पुराना और पिछड़ा माना जाता है। ये चीज लोकविद्या के बिलकुल विरोध में जाती है और उसके शोषण का आधार बनती है। लोकविद्या तो समाज में रहती है, लोगों के साधारण जीवन का हिस्सा होती है। न उसकी कोई बड़ी संस्थायें होती हैं न उससे कोई बड़े धंधे किये जाते हैं।

लोकविद्या का परीक्षण उसमें सुधार, नई खोजें और सब कुछ लोगों के जीवन के हिस्से के रूप में ही होता है। इसके छोटे-छोटे हिस्सों को खण्डों में डिजिटल रूप दिया जाता है जिससे वह सूचानाओं और ज्ञान के जाल में प्रवेश कर सकें, इंटरनेट पर भ्रमण के योग्य हो जाये और उसके लिये बाजार में अच्छा मूल्य मिल जाये। इस ज्ञान आधारित अर्थ व्यवस्था में मूल्य किसी चीज का हो इसके लिये उसे डिजिटल रूप में तो आना ही होगा। यह लोकविद्या के लिये पूरी तरह अहितकारी है और उसके शोषण का आधार तैयार करता है। लोकविद्या चूँकि समाज में होती है, अपने स्थान पर होती है इसलिये उसे मूल्य नही मिलता।

लोककला प्रभावी मीडिया है

पार्थ सारथि राय वामपंथी विचार की इंटरनेट पर की एक संस्था 'सन्हति' के संस्थापक सदस्य हैं। 'सन्हति' देश भर में चल रहे जन आंदोलनों से संबंध रखती है और उन पर चर्चा का एक स्थान देती है। इन्होंने कहा कि मीडिया के बारे में जब भी चर्चा होती है तब लोगों के दिमाग में आजकल टी.वी., टेलिफोन, इंटरनेट और मोबाइल जैसी बातें आती हैं। लेकिन इन सबका उदय तो पूँजीवादी समाज की जरूरतों के अनुकूल हुआ है। दूसरी ओर लोकविद्याधर समाज के अंदर संचार व सम्पर्क के अपने तरीके रहे हैं और आज भी हैं, इसी बात की ओर मैं ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यहाँ लोकविद्याधर समाज की चर्चा में पाँच अंगों की चर्चा हुई है- किसान, कारीगर, छोटा दुकानदार, आदिवासी और महिलायें। एक और छठा अंग भी है- मीडिया, लोकविद्याधर समाज का मीडिया, लोकविद्या की सूचना का मीडिया। जो यहाँ लम्बे समय से है और लोकविद्या के अंतर्गत है। हस्तशिल्प, चित्रकारी,बंगाल की जत्रा, उड़ीसा की पट्टकथा, राजस्थान की कठपुतली ये सब लोकविद्याधर समाज के मीडिया है। इस तरह के माध्यम हर गाँव,हर क्षेत्र, हर प्रांत में होते हैं। इनमें वैश्विक परिस्थितियों पर, समकालीन घटनाक्रमों पर, राजनीति पर, सभी बातों पर चर्चायें और सूचानाओं का आदान-प्रदान होता है। इन्हें हम अपने मीडिया के रूप में जीवित करके आंदोलन के अंग के रूप में विकसित कर सकते हैं। लोककला, लोकगीत, लोकशिल्प को संग्रहालयों और नुमाइशों से बाहर निकाल कर समाज की गति के साथ एक करना होगा। आंदोलन द्वारा आधुनिक मीडिया के इस्तेमाल पर पाबंदियां भी लगाई जाती है। जैसे बहुत बार माइक इस्तेमाल नहीं करने दिया जाता। क्या माइक के बिना मीटिंग नहीं हो सकती? दुनिया के बड़े-बड़े आंदोलन और क्रांतियां, आज हम जिसे मीडिया कहते हैं, उसके बिना ही तो संभव हुई हैं। 1857 में पूरे उत्तर भारत में अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ी गयी। क्या यह संचार और सम्पर्क के तरीकों के बगैर ही संभव हुआ? मीडिया के बारे में नये सिरे से सोचने की जरूरत है। फिर से

लोककला और मौखिक परम्पराओं को प्रभावी मीडिया का रूप दिया जा सकता है। पूँजीवादी सत्तायें लोकलाओं से इसलिये बहुत ज्यादा डरती हैं क्योंकि ये लोकविद्याधर समाज की संचार व सम्पर्क की जबर्दस्त विधा है। जीतन मरांडी का ही उदाहरण लें। इस लोककवि ने झारखण्ड के आदिवासियों के कष्टों और संवेदनाओं को गीत के मार्फत लोगों तक पहुँचाया। सरकार इतना डर गई कि उसे फांसी की सजा सुना दी।

लोक में संवाद के प्रकार और अर्थ

रवीन्द्र पाठक गया से हैं। जल जमात के निर्माण के कार्य से जुड़े हैं। उन्होंने कहा कि लोकविद्याधर समाज के साथ संवाद के लिए यह जरूरी है कि समाज को हम अंदर से समझें। कुछ उदाहरणों के साथ उन्होंने कहा कि कई बार यह सुनने में आता रहा है कि किसान सुनते नही हैं, बोलते नही हैं या महिलाओं के बारे में कहा जाता रहा है कि सभा-संगोष्ठियों में वक्ता की बात न सुनकर वे आपस में ही बात करने लगती हैं। इन उदाहरणों से यह बात साफ होता है कि उन्हें एक तरफा बोलने या सुनने की आदत नहीं है। और महिलायें तो बहुत बोलती हैं लेकिन एक तरफा संवाद को लोकविद्याधर समाज में स्थान नहीं है। संवाद तो मौनी बाबा के साथ भी होता है। पत्थर की मूर्ति के साथ भी संवाद होता है। तो लोकविद्या-मीडिया या वैकल्पिक मीडिया को गढ़ने के लिए इस संवाद के प्रकार को समझना होगा। भारतीय समाज के साथ संवाद करने के लिए थोड़ा गहराई में जाना होगा। यह

अधिवेशन में आयीं ग्राम-बरईपुर, सारनाथ की विस्थापन के विरोध में संघर्षशील किसान महिलाएँ

भी जरूरी है कि लोकविद्या के इस संवाद में लोक की सक्रिय उपस्थिति हो। बाजार आधारित बेसमय लाउस्पीकर से संवाद यह लोकविद्या-मीडिया का अंग नहीं हो सकता।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह कि समाज के साथ सघन संवाद के रास्तों को बनाना लोकविद्या-मीडिया का काम है, न कि विरल संवाद के। यह संवाद हृदय प्रधान होता है।

मीडिया के कुछ स्थानीय प्रयास

अजय सिंगरौली रहते हैं और वहाँ के विस्थापन विरोधी समूह तथा लोकविद्या पहल के सक्रिय सदस्य हैं। इन्होंने अपनी बात छोटे प्रयासों की चर्चा के साथ शुरू की। पहले बताया कि बांदा में चार पेज का एक अखबार 'खबर लहरिया' निकलता है। इसे वहाँ की महिलायें ही निकालती हैं। यह लोकप्रिय है और कई वर्षों से निकल रहा है। यह वहीं की भाषा में निकलता है। भाषा का महत्व हमने सोनभद्र में भी महसूस किया। हम अवधी क्षेत्र से आये थे और जब हमने थोड़ी भोजपुरी सीखी तो वहाँ लोगों के साथ सम्बन्ध और समझ का स्तर ही बदल गया। महिलायें गाँव की बैठकों में भी अपनी बात भोजपुरी में ही कहती थीं और भाषण के जरिये नहीं, गीतों के जरिये। और गाँव के लोग बखूबी समझ जाते थे कि ये क्या कह रही हैं। लोकविद्याधर समाज में अद्भुत क्षमतायें हैं, भाषाओं और रूपों की विविधता हैं। बीजपुर (जिला-सोनभद्र) के गोविन्द बैगा अद्भुत नाचते हैं और गाते हैं। जो जोश और उत्साह दिखायी देता है, जो उमंग दिखायी देती है लगता है कोई दैवी ताकत उनमें उतर आयी है। इन लोगों को ऐसे अलग से देखें तो उदास और दयनीय से नज़र आयेंगे लेकिन जब अपनी मनपसंद अभिव्यक्ति में रंगते हैं तो अद्भुत ऊर्जा सम्पन्न दिखायी देते हैं। इन ताकतों को पहचान कर और उन्हें जोड़ते हुए अगर हम काम करें तो मुख्य धारा की मीडिया का भय कम हो जाता है और चीजें कुछ सरल नजर आने लगती हैं।

किसान संगठन का रणसिंघा

भारतीय किसान यूनियन के राष्ट्रीय महासचिव **राजपाल शर्मा** ने कहा कि मीडिया ने किसान आंदोलन का सहयोग कभी नहीं किया। किसान आंदोलन ने प्रचार और प्रसार के अपने तरीके बनाये। चौधरी महेन्द्र सिंह टिकैत के गॉव सिसौली में रणसिंघा बजता था जो 2 किलोमीटर दूर तक सुनाई देता था। फिर 2 किलोमीटर दूर के गाँव में बजता था और फिर आगे के गाँवों में। इसतरह 15 मिनट में सौ गाँवों तक खबर जाती थी और लोग इकट्ठा हो जाते थे। हम प्रयाग और हरिद्वार में हर साल जनवरी और जून में महापंचायतें करते हैं। ये माघ मेलें का समय है। इसके अलावा गंगातट के मेलों, अपनी पंचायतों और शिविरों से अपनी बात किसानों तक पहुँचाते हैं। मीडिया का व्यवहार किसान आंदोलन के साथ हमेशा ही सौतेला रहा है। हमें अपना ही प्रचार-संचार तंत्र बनाना जरूरी होता है।

लोक मीडिया के सभी प्रकारों को साथ आना चाहिए

सुनील यादव वामपंथी चिंतक हैं, इलाहाबाद से 'समकालीन जनमत' पत्रिका का सम्पादन करते हैं। इन्होंने मुख्यरूप से वैकल्पिक मीडिया बनाने, उसकी जरूरत और उसके लिए बनते मौकों की चर्चा की। यह कहा कि मुख्य धारा के मीडिया की सीमायें एक बार फिर उजागर हुई है। भ्रष्टाचार के बड़े-बड़े प्रकरणों में मीडिया भी शामिल है यह सामने आया है। लेकिन वैकल्पिक मीडिया का आधार जो हमारी कला,भाषा, सम्प्रेषण शक्ति, संगीत आदि में है वह बड़े दुरूपयोग के दौर से गुजर रहा है। भोजपुरी को ही लें। भोजपुरी संगीत और सिनेमा यों पेश किया जा रहा है जैसे इस समाज में गंदगी और अश्लीलता ही भरी हुई है। जबकि वास्तविकता यह है कि गाँव-गाँव में ऐसे लोग मिलते हैं जो अपनी बात कहना जानते हैं, संगीत और कला में दक्षता रखते हैं और उसके मर्मज्ञ भी हैं। वैकल्पिक मीडिया को इन्हें संगठित करने की ओर ध्यान देना होगा। लेकिन जब हम लोकविद्या की दुनिया और विश्वविद्यालय की दुनिया के बीच एक दीवार खड़ी कर देते हैं तो बड़ी समस्या पैदा हो जाती है। विश्वविद्यालय की बुराइयों की बात हो और लोकविद्या की दुनिया में सबकुछ अच्छा ही देखा जाय इससे बात बनती नहीं। हमें दोनों ही जगह आलोचना की दृष्टि अपनानी होगी। विश्वविद्यालय से हमें जो मिलता है और मिला है उसे पहचानना चाहिए। विश्वविद्यालय के अपने काम के स्थानों का इस्तेमाल करने आना चाहिए। यहाँ उपस्थित लोकविद्या के पक्ष में प्रबल तर्क देने वाले कई लोग इन्हीं विश्वविद्यालयों से पढ़कर आये हैं। दूसरी ओर लोकविद्या की दुनिया में रसूख रखने वाले उन सामंती मूल्यों के समर्थक हैं जिनके अंतर्गत दलितों, महिलाओं और आदिवासियों के हिस्से शोषण के अलावा कुछ नहीं पड़ता। इस दुनिया से कबीर और रैदास हमारे बड़ा सहारा हो सकते हैं। बदलाव की परम्पराओं में जीवन को ही विश्वविद्यालय मानने वाले विचार की प्रधानता है। रूसी क्रान्तिकारी लेखक मक्सिम गोर्की को ही लें जो कालेज कभी नहीं गये। सवाल विश्वविद्यालय जाने का या न जाने का नहीं है, बल्कि जनता के पक्ष में खड़े होकर जीवन के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि अपनाने का है। रूमानियत और अति सरलीकरण से बचना ज़रूरी है। आलोचना के दृष्टिकोण और लोकहित की चिंता से ही जीवन अपने सही अनुपातों में नजर आता है। आज जब प्रमुख धारा का मीडिया बेनकाब हो रहा है, वैकल्पिक मीडिया के, लोक-मीडिया के सभी प्रयासों को साथ आने की कोशिश करनी चाहिए जिससे जो नये मौके बन रहे हैं उनमें लोकमीडिया का विस्तार हो सके।

शिक्षा के चैनल पर लोकविद्या भी हो

निरूप रेड्डी उच्चतम न्यायालय के वकील हैं और तेलंगाना आंदोलन के साथ नजदीक से जुड़े हुये हैं। उन्होंने सभा के सामने तीन बातें रखीं। पहली जीवन के अधिकार से सम्बन्धित थी। उन्होंने कहा कि संविधान की इससे संबंधित धारा 21 में नई-नई बातें शामिल होती गयीं हैं, पर्यावरण, फुटपाथ पर जीना यह सब शामिल हुआ है। हम इस पर भी अब विचार करेंगे कि किस तरह लोकविद्या पर आधारित जीवन का संरक्षण भी शामिल किया जा सके। दूसरी बात उन्होंने यह कही कि अभी गाँव की समस्याओं को हल करने की योजनायें जो लोग बनाते हैं उनमें गाँव वाले ही शामिल नहीं किये जाते। और तीसरी यह कि इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय जैसे संस्थानों के पास शिक्षा के अपने दूर दर्शन के चैनल हैं उन्हें इन चैनलों पर लोकविद्या के प्रचार प्रसार का काम करना चाहिये।

आधुनिक युग ने लोक ज्ञान को दबाया

आश्विनी पंकज राँची से आये । इन्होने कहा कि जिस समाज के पास ज्ञान और कला की विरासत है उसे हाशिये से भी बाहर ढकेल दिया गया है। आधुनिक विकास के नजरिये से उसे अनफिट करार दिया गया है।जिसे आधुनिक शिक्षा प्राप्त है,जो विश्वविद्यालय में पढ़ा है वही ज्ञानी माना जाता है और वही देश और दुनिया में नियंत्रण के सभी स्थानों पर बैठने के उपयुक्त माना जाता है। फ्रांस के पुनर्जागरण और औद्योगिक क्रांति के बाद जो शिक्षा और विश्वविद्यालय के रूप बने उसमें कोई विविधता नहीं है। दुनियाभर में एक ही जैसी बात है। यों देखिये कश्मीर से कन्या कुमारी तक एक ही किस्म का खान-पान, एक ही किस्म की बिल्डिंग, एक ही किस्म का बाजार,रहन-सहन और संस्कृति है। आधुनिक तकनीकी और उत्पादन सम्बन्धों ने पुरानी दस्तकारी और कला से जुड़े समाजों और सम्प्रदायों को लगातार पीछे ढकेल दिया। वर्चस्व का राजनैतिक तंत्र लोकविद्याधर समाज के नैसर्गिक अधिकारों और परम्पराओं पर काबिज होता चला गया। मैं आदिवासी क्षेत्र,झारखण्ड से आता हूँ।वहाँ के आदिवासियों ने तब तक संघर्ष नही किया जब तक पीछे हटने की जगह थी। लेकिन मैदानी लोग बढ़ते ही चले आये और अंत में उन्हें लड़ाइयां लड़नी ही पड़ीं। 1857 के पहले अंग्रजों से आदिवासियों की लड़ाइयों की एक लम्बी श्रृंखला है। पहड़िया, संथाल, मुण्डा सभी ने बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ीं। इन सबसे एक सीख यह मिलती है कि किसानों, महिलाओं, दलितों के जो विभिन्न स्थानों पर संघर्ष होते रहते हैं उन्हें केवल स्थानीय संघर्षों के रूप में नही देखना चाहिये। ये वैश्विक संघर्ष हैं। आधुनिक शिक्षा और मीडिया के विभिन्न रूपों के मार्फत उन्हें लगभग दबा दिया जाता है। लोककलाओं का उदाहरण लेकर अश्विनी जी ने थोड़ा विस्तार में यह बताया कि किस तरह नाटकों में स्त्रियों की भागीदारी हमारे यहाँ सैकड़ों वर्ष पुरानी रही है लेकिन कलकत्ता के अंग्रेजी और बम्बई के पारसी थिएटर के लिये स्त्री-पात्रों की खोज में आई दिक्कतों का हवाला दे-देकर यह समझा दिया गया कि स्त्री भागीदारी की कोई परम्परा इस देश में नही रही है। आधुनिक शिक्षा और मीडिया ने मिलकर लोक कला और ज्ञान की परम्परा और जीवंतता दबाने का काम बखूबी किया, उन्हें बहिष्कृत किया। उन्होंने ने 'लोक' शब्द पर आपत्ति जताई और कहा कि यह हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन से पनपा है। इससे ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण और विमर्श को बढ़ावा मिलता है। हमारी परम्परा के शब्द 'जन' अथवा 'गण' हैं, उनके प्रयोग और विमर्श की अपनी परम्पराओं का आग्रह रखना चाहिये।

विविध विचार

पंकज पुष्कर दिल्ली के एक बड़े शोध संस्थान सी.एस.डी.एस. में कार्य करते हैं। उन्होने कहा कि लोकविद्या जन आंदोलन जिस किसान आंदोलन की जमीन से जन्मा है, उसी किसान आन्दोलन का मैं एक छात्र रहा हूँ। 1993 में किसान प्रतिष्ठा मंच बनाया गया था जिसका मूल विचार यह था कि किसान को गरीब कहना यह एक अपराध है।भारत में किसान शोषित है।आज किसान,कारीगर,आदिवासी समाजो पर आक्रमण तीखे हो रहे हैं, ऐसे में लोकविद्या पर अनेक विचारों, व्यक्तियों और समूहों द्वारा जो कार्य और चर्चायें हो रही हैं उनसे नाता जोड़ने और रिश्ता बनाने की ओर बढना चाहिये। सभी के बीच एक मैत्री का संवाद कैसे शुरू हो इस बारे में लोकविद्या जन आंदोलन को कदम बढ़ाना चाहिये।

पूर्णिमा उराँव झारखण्ड की रहने वाली हैं और अब दिल्ली में रहकर पत्रकारिता के क्षेत्र में सक्रिय हैं। आपने कहा कि लोकविद्याधर समाज का मीडिया अलग हो लेकिन इस पर पूँजी की व्यवस्थायें हावी न हों इस पर सोचना जरूरी है। उन्होंने यह भी कहा कि इस अधिवेशन में बुनकरों के बीच उन्हीं के प्रयासों से निकल रहा पत्र 'बुनकर नज़रिया' एक बहुत अच्छा प्रयास है और ऐसे प्रयासों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। ऐसे प्रयासों में मैं भी अपना योगदान करना चाहूंगी।

संजय कुमार काशी हिन्दूविश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं। इन्होंने लोकलाओं की समाज में विस्तृत मोजूदगी की ओर ध्यान आकर्षित किया और कहा कि ये वैकल्पिक मीडिया की आधार शिलायें हैं। उन्होंने कहा कि हमें मुख्य धारा का मीडिया क्या करता है और क्या नहीं करता है इसके बारे में ज्यादा चिंता नहीं करनी चाहिये और लोककलाओं को मजबूत करने का काम करना चाहिये।

नरसिंग राव आन्ध्र प्रदेश से आये कलाकार थे। उन्होंने कहा कि वे एक बुनकर परिवार से हैं और अपने माता-पिता से उन्होंने बिनकारी सीखी है। इस कला को उन्होंने बड़े होने पर अन्य कलाओं के रूप में विस्तार दिया। मोहनराव से मुलाकात के बाद उन्हें लगा कि वे अपनी कला से लोकविद्याधर समाज के संगठन और आंदोलन में सहयोग कर सकते हैं। उन्होंने तरह-तरह की किसानी और कारीगरी की मूर्तियां बनाई हैं और इन मूर्तियों का संदर्भ गांधी जी के ग्रामोद्योग और आंदोलन के छोटे-छोटे नमूनों के मार्फत बनाया है। ये आदम कद मूर्तियां विशाखापट्टनम् के पास एक 'कलाग्राम' में रखी हुई हैं। उन्हीं के फोटो आप यहाँ चारों तरफ देख रहे हैं। लगभग 100 मूर्तियां उन्होंने बनाई है। इन्ही कलाकृतियों को लेकर आंध्रप्रदेश में एक लोक कला यात्रा की योजना है और आशा है कि लोकविद्याधर समाज के लोग जब अपनी विद्या की यह प्रदर्शनी देखेंगे तो लोकविद्या जन आंदोलन की ओर आकर्षित होंगे।

लोक कलाकारों की बदहाली को रोकें

स्वाति कीर्तने पुणे में रहती हैं। संगीत की ज्ञाता व स्वयं कलाकार हैं। शास्त्रीय संगीत की शिक्षा से लैस हैं लेकिन लोक संगीत और उसके दर्शन की ओर झुकाव रहा है। महाराष्ट्र की संत परम्परा के संगीत व दर्शन पक्ष को समझने में विशेष रुचि रखती हैं। उन्होंने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में कहा कि लोक संगीत जीवन से जुड़ा हुआ है और जीवन जितना बहुरंगी है उतना ही लोक संगीत भी। रोजमर्रे के कार्यों के साथ गाये जाने वाले गीत विभिन्न समुदायों के जीवन और

जीवन मूल्यों का दर्शन कराते हैं। भारत एक खेतिहर देश है और खेतिहर समाज लोक गीतों का भण्डार है। महाराष्ट्र में बड़ी लम्बी संत परम्परा रही है। तुकाराम, ज्ञानेश्वर,एकनाथ, चोखा, सावतामाली, बहिणाबाई, जनाबाई ऐसे संत हैं जिनके पद लोगों के जुबान पर चढ़ गये। ये ऐसे पद रहे हैं जो समाज में लोकहितकारी बदलाव, नैतिक मूल्यों की स्थापना और मनुष्य को समाज में व्यवहार के मूल्यों के बारे में सोचने के लिये मजबूर करते हैं।इन सभी प्रकार के गीतों की लम्बी परम्परा रही है। महाराष्ट्र में ही नहीं बल्कि देशभर में सभी जगह ऐसा मिलता है। उन्होंने कहा कि लोकविद्या जन आंदोलन को लोक संगीत व इसके दर्शन से बहुत ऊर्जा मिलेगी और इस ओर हमें ध्यान देना चाहिये। स्वाति जी ने सावतामाली और बहिणाबाई के दो पद गा कर सुनाये और उनके अर्थो को भी सभा के बीच रखा। अंत में उन्होंने सभा का ध्यान इस ओर खींचा कि लोकगायक, लोकनर्तक व लोकनाट्य कलाकारों की आज बहुत खराब स्थिति है। सरकारें केवल महोत्सवों के समय ही उन्हें याद करती हैं, और उनकी आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय है।

मुख्यधारा और वैकल्पिक मीडिया के बीच सेतु हो

मेधा पुष्कर दिल्ली विश्वविद्यालय की हैं। इन्होंने मुख्य धारा के मीडिया की एक छोटी-सी व्याख्या करते हुये कहा कि उसमें तमाम बातें नकारात्मक होने के बावजूद आम आदमी की सूचना का स्रोत वही है। और रोज के अखबारों में जो छपता है उसमें उसे कोई बड़ा संदेह या उसके प्रति अविश्वास होता है ऐसा नहीं है। और यह भी कि हम लोगों को यानि जन आंदोलनों के पक्षधर लोगों को भी मुख्यधारा के मीडिया का इस्तेमाल करना चाहिये। वहाँ कुछ न कुछ जगह अवश्य रहती है जिसका इस्तेमाल हम अपनी रिर्पोटिंग करने के लिये या अपनी बात कहने के लिये कर सकते हैं। ऐसे इस्तेमाल के उदाहरण भी उन्होंने दिये। वैकल्पिक मीडिया से जुड़ने का महत्व भी उन्होंने बताया। कहा कि देश के तमाम क्षेत्रों में जन आंदोलन होते रहते हैं। उन सबका वैकल्पिक मीडिया के रूप में अपना कुछ न कुछ प्रयास होता है। हमें उसके साथ भी जुड़ना चाहिये। मुख्य धारा का मीडिया और वैकल्पिक मीडिया के बीच सेतु बनाने के प्रयास भी होने चाहिये। इन सब में एक खतरा जरूर है कि आप जितना इस्तेमाल मुख्य धारा के मीडिया का करेंगे उससे ज्यादा इस्तेमाल वे आपका न कर लें। खासकर लोककलाओं के क्षेत्र में यह बहुत हुआ है कि उन्हें कुछ प्रचार मिले इस दृष्टि से की गई स्थानीय रिर्पोटिंग धीर-धीरे आगे बढ़ जाती है और बालीवुड में ये कलायें पहुँच जाती हैं।

लोकविद्या मीडिया को ही मुख्यधारा बनाना है

अभिजित मित्रा हैदराबाद में आई.आई.आई.टी. में प्राध्यापक हैं और लोकविद्या समूह व विद्या आश्रम के संस्थापक सदस्यों में हैं। उन्होंने मुख्य धारा के मीडिया की सीमाओं की ओर ध्यान खींचा और कहा कि इसके बढ़ते रूपों से विचलित न होकर लोकविद्याधर समाज के संचार-सम्पर्क पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए और वहाँ नवीनीकरण और नई खोजों को बल देने और स्थान बनाने का काम करना चाहिए। सूचना,ज्ञान, और समझदारी ये अलग-अलग स्तर की बातें हैं और कम्प्यूटर और संचार की नई प्रौद्योगिकी केवल सूचनाओं के संगठन और संचार और उसके चलते एक खास किस्म के सम्पर्क की साधन हैं। पैसे वालों के घर में सबके अलग कमरे होते हैं और अलग टेलिविजन। अब एक टेलिविजन में एक ही समय एक से ज्यादा कार्यक्रम देखे जा सकते हैं। इंटरनेट का उदाहरण लें कॉलेज के हॉस्टल के लड़के अपने बगल के कमरे वाले से फेसबुक पर बात करते हैं। यह सब इन लोगों को एक मायावी लोक में ले जाता है। किन्तु लोकविद्या में प्रमुख बात समझदारी की है, संवेदना की है, जिसे आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी ज्ञान का दर्जा नही देती। न उसे संगठित कर सकती हैं और न सम्प्रेषित। हमें मुख्य धारा के मीडिया में जगह हासिल करने के लिए नही सोचना है, हमें तो लोकविद्या मीडिया को ही मुख्यधारा बनाना है।

'वैकल्पिक' की जाँच कर लें

सुनील सहस्त्रबुद्धे ने कहा कि वैकल्पिक मीडिया का विचार एक गंभीर जाँच की मांग करता है। पिछले 30-40 वर्षों में इस देश में वैकल्पिक विकास, वैकल्पिक राजनीति, वैकल्पिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी जैसे विचारों, अभियानों आदि को हम देख चुके हैं। मैं इनमें से कई का हिस्सा भी रहा हूँ। यह अनुभव और इनकी समीक्षा हमें यह सोचने को मजबूर करती है कि यह वैकल्पिक अभियान कैसे काम के होते हैं और कितना दूर तक चल सकते हैं। वैकल्पिक मीडिया के नाम पर कोई स्थानीय प्रयास किया जाय, कोई भाषाई प्रयास किया जाय, कोई तुरंत की समस्या के हल में शामिल हुआ जाय, एक बुलेटिन निकाल दिया जाय, किसी प्रयोजन से एक नेटवर्क बना दिया जाय,

नरसिंग राव का मूर्तिशिल्प

यह सब तो ठीक ही है, इनका मतलब निकलता है और ये उपयोगी भी होते हैं। लेकिन मुख्यधारा के मीडिया के विकल्प के रूप में वैकल्पिक मीडिया का कोई समग्र विचार अथवा कार्यक्रम की अवधारणा हो यह समस्याजनक जान पड़ता है। हमें यह भी जाँच करनी चाहिये कि वैकल्पिक वित्तीय व्यवस्था, वैकल्पिक पूँजी या वैकल्पिक राज्य व्यवस्था किस किस्म की अवधारणायें हैं। स्थानीय स्तर पर ऐसी बातें और कार्य भी किये ही जाते हैं और वे अर्थपूर्ण भी होते हैं किंतु आज की सत्ता के इन केन्द्रीय संस्थागत आधार स्तम्भों के क्या अलग-अलग से कोई समग्र विकल्प हो सकते हैं? मीडिया भी इन जैसा ही आज की व्यवस्था का एक आधार स्तंभ है। इसलिये प्रश्न कि वैकल्पिक मीडिया का विचार कैसा और कितना अर्थपूर्ण विचार है।

इस संदर्भ में ज्ञान के दर्शन के प्रासंगिक हिस्से शायद कुछ मार्गदर्शन कर सकें। आधुनिक विज्ञान यानि साइंस की ज्ञान की परम्परा ने सत्य का एक विचार बनाया जो सत्य की खोज के विचार के साथ जुड़ा हुआ है। प्रारंभिक काल में सत्य की जिस भी परिकल्पना ने सत्य की खोज का साइंस के साथ एकाकार किया हो, अब सत्य की खोज का विचार ही इस आधुनिक परम्परा में सत्य को परिभाषित करता है। लोकविद्या में सत्य की अवधारणा अलग है। यहाँ सत्य के निर्माण और पुर्निर्माण का विचार है। और इसका तरीका आलोचनात्मक न होकर सृजन और एकता का है। गांधी को देखिये तो यही दिखाई देगा। माओ-त्से-दुंग को देखिये तो भी यही दिखाई देगा। हालांकि माओ मार्क्सवादी परम्परा में आते हैं, चीन के और इसलिये एशिया के या साम्राज्यवाद के शिकार देशों के बहिष्कृत समाज के एक महान नेता के रूप में वे उनकी सोच को एक विलक्षण और उत्कृष्ट अभिव्यक्ति दे रहे होते हैं। आलोचनात्मक दृष्टि विकास का तरीका यूरोपीय वैज्ञानिक परम्परा का तरीका है, दूसरे पर प्रहार करके एक दृष्टि का विकास। अपने यहाँ भी यह मिलेगा लेकिन संगठित विद्या की दर्शन परम्पराओं में न कि लोकविद्या में।

हमारे विश्वविद्यालय के मित्रों ने यहाँ समीक्षात्मक दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया। समीक्षात्मक दृष्टिकोण और विश्लेषण के तरीकों की एक परम्परा लम्बे समय से सार्वजनिक बौद्धिक पटल पर छायी हुई है। आधुनिक यूरोप में कुछ सौ साल पहले शुरू हुई यह परम्परा अब विश्वविद्यालयीय अध्ययन के हर पहलू पर पूरी तरह हावी है। किंतु लोकविद्या विषयक बातचीत करते वक्त हमें इस बात का ध्यान रखना जरुरी है कि कैसे समीक्षात्मक तरीकों का इस्तेमाल किया जाय और किन से बचा जाय। प्रस्थापित तरीकों के असमीक्षात्मक इस्तेमाल से समस्या पैदा होती है। लोकविद्या विमर्श को इन संदर्भों में अपनी एक स्वतंत्र दृष्टि विकसित करने की जरुरत है, जिसके मानक लोकविद्याधर समाज की एकता और लोकविद्या जन आंदोलन की अवधारणाओं एवं अभ्यास में अवस्थित हों। लोकविद्या की परम्परा में वह संत परम्परा है जो समाज में सतत् सत्य का निर्माण और पुर्निर्माण करती रहती है। संत वे होते हैं जो अपने काल एवं स्थान से अनुप्राणित एवं उनके अनुकूल सत्य का निर्माण व पुर्निर्माण करते रहते हैं।

लोकविद्या जन आंदोलन के संदर्भ में मीडिया का सवाल इस चिंतन का आग्रह करता है कि मीडिया में ज्ञान और सत्य की अवधारणा कैसी है, होती है और होनी चाहिये। यह कोई नई बात नहीं है। सम्बन्धित साहित्य में और बहसों में यह चर्चा मिलती है। मीडिया में सत्य और ज्ञान के अर्थों अथवा रूपों की चर्चा तरह-तरह के दृष्टिकोणों से की गई है। हम केवल लोकविद्या दृष्टिकोण से यह बात करने का आग्रह कर रहे हैं। मीडिया का सवाल बहुत बड़ा सवाल है, उतना ही बड़ा जितना राज्य अथवा पूँजी का है।

लोकविद्या समाचार एजेन्सी बनायें

कृष्णराजुलु ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में दो बातें कहीं। एक यह कि कला लोकविद्या समाज में मीडिया का एक प्रबल रूप है जिसे आज के समाज और आंदोलन की जरूरतों के हिसाब से संगठित करना जरूरी है। और दूसरी यह कि एक लोकविद्या समाचार एजेन्सी बनाना चाहिये।

आंध्र प्रदेश के कार्यकत्ताओं ने नरसिंगराव के मूर्तिशिल्प को एक नुमाइश की शक्ल देकर एक ट्रक पर चढ़ाकर एक लोकविद्या कला यात्रा का आयोजन तय किया है। इसके सहारे कस्बों में और स्थानीय बाजारों में लोकविद्या की बात की जायेगी, लोकविद्या जन आंदोलन और लोकविद्या बाजार की बात की जायेगी। दृश्यकला माध्यम, भाषा की सीमायें तोड़कर संदेशों और सूचनाओं के प्रसारण का पक्का तरीका है। लोकविद्याधर समाज के कलाधर मूर्तियां बनाने वाले, चित्र बनाने वाले, गाने वाले, नौटंकी वाले, ये सब मीडिया के मार्फत अपनी गतिविधियों में नये आयाम जोड़ेंगे, लोगों का मनोरंजन करेंगे और लोकविद्या जीवन दर्शन में उनका विश्वास बढ़ाकर लोकविद्या जन आंदोलन बनाने में सहयोग करेंगे।

यहाँ उपस्थित लोगों में एक लोकविद्या समाचार एजेंसी बनाने की क्षमता है। स्थानीय भाषाओं में छोटे-छोटे अखबारों के मार्फत आंदोलन के बारे में चर्चायें होनी चाहिये। जगह-जगह पर क्या हो रहा है इसकी खबरें इन छोटे-छोटे अखबारों को लोकविद्या समाचार एजेंसी से ही मिल सकती हैं।

लोकविद्या मीडिया बनाने में कला और लिखित शब्द दोनों की भूमिका को पहचानकर आंदोलन की जरूरत के हिसाब से उन्हें संगठित करना होगा।

•

अधिवेशन के आयोजन में सक्रिय सहयोग के लिये निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं–

1. **पूरे अधिवेशन की वीडियो रिकार्डिंग के लिये तारिक़ और राजीव**
2. **परिसर, मंच व और सभी व्यवस्थाओं के लिये फिरोज़, बबलू, नंदलाल, आरती, गीता, अलीम, और कृष्णकुमार**
3. **भोजन की व्यवस्था के लिये लवकुश, उनके साथी, बरईपुर के किसान और चिंतन ढाबा के कार्यकर्ता**
4. **अनाज से सहयोग के लिये स्थानीय किसान समाज**

बुक पोस्ट

लोकविद्या पंचायत, मासिक समाचार पत्र, विद्या आश्रम (सा 10/82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी-221007) की ओर से **डा.चित्रा सहस्त्रबुद्धे** द्वारा सम्पादित, प्रकाशित एवं मुद्रित।
प्रकाशन का स्थान : विद्या आश्रम, सा 10/82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी-221007, स्वामी : विद्या आश्रम
website : vidyaashram.org **Blog :** lokavidyapanchayat.blogspot.com , lokavidyajanandolan.blogspot.com **e-mail :** vidyaashram@gmail.com **Phone :** +91-9838944822
प्रेस : **सत्तनाम प्रिण्टर्स**, एस-1/208 के-1, नई बस्ती, पाण्डेयपुर, सारनाथ रोड, वाराणसी-221002